फरवरी, १९४८ ई०

मुद्रक — केसरीसिंह यादव, कल्याण प्रिंटिंग प्रेस, आगरा।

समर्पित

उन देशवासियों को

जिनमें सोचने-समझने की क्षमता है

और है कार्य करने का साहस !

हमारी अपील है

कि

बापू के नैतिक और राजनीतिक उत्तराधिकारी

पण्डित नेहरू

अपने आदर्शों और बापू की अंतिम इच्छाओं

के अनुसार

भारत का नव-निर्माण करें !

गाँधीजी की अंतिम इच्छा

काँग्रेस के नये विधान के सम्बन्ध में गाँधीजी के सुझाव

नयी दिल्ली, ८ फरवरी। अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के प्रधान मंत्री आचार्य जुगुलकिशोर ने महात्मा गाँधी द्वारा लिखा हुआ काँग्रेस का नया विधान प्रकाशित कर जनता के सामने रखा है। विधान का मसविदा प्रकाशित करते हुए आचार्य जुगलकिशोर ह एक वक्तव्य में कहा है कि ३० जनवरी को सबेरे जब मैं बिड़ला भवन गया तो मुझे मसविदे की एक टाइप की हुई कापी दी गई। मैं और पंडित शंकरराव देव गाँधीजी से मिलकर मसविदे के कुछ अंशों पर विचार करना चाहते थे, परन्तु इसके पूर्व ही अत्याचारी की गोली ने गाँधीजी के प्राण ले लिये।

मसविदे पर विधान समिति गंभीरता और श्रद्धापूर्वक विचार कर रही है और अपने विचारों को वह अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के सामने अगली बैठक में रखेगी। इस बीच समिति उन लोगों के सुझावों का भी स्वागत करेगी जिन्हें काँग्रेस के विधान से दिलचस्पी है।

गाँधीजी के सुझाव

उक्त काँग्रेस के विधान के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी के सुझाव ये हैं :—

हालांकि भारत दो भागों में बँट गया है और उसे काँग्रेस के बताये मार्ग से राजनीतिक आजादी भी मिल चुकी है, पर काँग्रेस का

जो रूप आज है, यानी प्रचार करने वाला तथा पार्लियामेंट के ढंग पर काम करने वाला रूप, भविष्य के लिए उसका कोई उपयोग नहीं है। हिंद के सात करोड़ गाँवों को अभी सामाजिक, नैतिक तथा आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त करना शेष है, जो नगरों से एकदम अलहदा है। हिंद के सैनिक बल के ऊपर उसके नागरिक बल का प्रभुत्व होना लाजिमी है। इसे राजनीतिक तथा साम्प्रदायिक दलों के दूषित संघर्ष के बीच पड़ जाने से बचाना होगा। इस कारण तथा अन्य कारणों से वर्तमान अखिल भारतीय कांग्रेस संस्था भंग होगी और उसके स्थान पर एक लोक सेवक संघ का रूप बनेगा जो निम्नलिखित तथा समयानुसार बनाये गये अन्य नियमों के अनुसार कार्य करेगा।

पाँच बालिग पुरुषों अथवा महिलाओं की एक पंचायत होगी जो सब के सब ग्रामीण होंगे अथवा गाँवों से प्रेम रखने वाले होंगे। दो पंचायतें मिलकर अपना एक मुखिया चुनेंगी और इस प्रकार एक काम चलाने वाली संस्था बन जायगी।

इस प्रकार के ५० मुखिया अपने में से एक नेता चुन लेंगे जिसके अनुशासन में वे सब काम करेंगे। हर दो सौ गाँवों के बीच इसी प्रकार के नेता चुने जायगे। ये नेता अपने क्षेत्रों के लिए उत्तरदायी होंगे तथा सामूहिक रूप में अन्य नेताओं के साथ मिलकर काम करेंगे।

(चूँकि भारत में प्रांतों का निर्माण अभी अंतिम रूप से नहीं हुआ है, इसलिए उपरोक्त पंचायतों के समूहों का वर्गीकरण प्रान्तीय तथा जिला कौंसिल के रूप में नहीं किया गया है। यह ध्यान रखना चाहिए कि सम्पूर्ण भारत की बुद्धिमानी और पूर्ण भक्ति के साथ सेवा करना ही इन नेताओं का प्रधान उद्देश्य होगा और यही उनकी ताकत होगी।

कार्यकर्त्ता

कार्यकर्ताओं की विशेषताएं ये हैं:—

(१) हर कार्यकर्ता हाथ की कती अथवा अखिल भारतीय चर्खा संघ द्वारा प्रमाणित खादी का नियमित रूप से व्यवहार करेगा और आदतन मादक द्रव्यों से दूर रहेगा। अगर वह हिंदू है, तो उसमें तथा उसके परिवार में छूआछूत की कोई भावना न होनी चाहिए। उसे साम्प्रदायिक एकता में विश्वास होना चाहिए तथा उसके मन में सब धर्मों, वर्गों और जातियों के लिए समान आदर होना चाहिए।

(२) वह अपने क्षेत्र के हर ग्रामीण से व्यक्तिगत संपर्क कायम करेगा।

(३) वह ग्रामवासियों में कार्यकर्ता चुनेगा और उन्हें ट्रेनिंग देगा और इस बात का लेखा व्यौरा रखेगा।

(४) वह अपने दैनिक कार्यों का लिखित व्यौरा भी रखेगा।

(५ यह ग्रामीणों को उनकी खेती तथा दस्तकारियों के द्वारा आत्म-निर्भर बनायेगा।

(६) वह ग्रामीणों को स्वास्थ्य तथा सफाई की शिक्षा देगा और उन्हें बीमारियों तथा अस्वस्थकर चीजों से अलग रखने के प्रयत्न करेगा।

(७) वह ग्रामीणों की शिक्षा का प्रबन्ध करेगा। शिक्षा हिन्दुस्तानी तालीमी संघ द्वारा प्रचारित गई तालीम के ढंग पर होगी।

(८) जिन लोगों के नाम मतदाता सूची में नहीं होंगे उन्हें वह शामिल कराएगा।

(९) जिन लोगों में मतदाता की योग्यता नहीं है उनमें वह योग्यता के लिए प्रोत्साहित करेगा।

लोक सेवक संघ इन संस्थाओं को प्रमाणित संस्थाएँ करार देगा :—अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, हरिजन सेवक संघ तथा गौसेवक संघ।

संघ ग्रामवासियों तथा अन्य से अपने व्यय के लिए धन जमा करेगा।

[यह पर्चा देहली में हजारों की तादाद में विजयादशमी पर बाँटा गया था । यही नहीं, गुण्डों की हिम्मत इतनी बढ़ी कि एक सरकारी टिकिट लगाकर इसकी एक प्रति हमारे बापू के पास भी भेज दी गई । फिर भी देहली पुलिस और भारतीय गृह-विभाग ने कोई कार्यवाही न की ।]

केवल हिन्दुओं और सिखों के लिये

गाँधी-जिन्ना-सुहरावर्दी त्रिगुट्ट का अन्त करो ।

एक दिन जब दुनियाँ को मालूम होगा कि गांधी मुसलमान था तब वह आश्चर्य में डूब जायगी । गाँधी हिन्दू महात्मा के वेश में दूसरा जिन्ना है । उसका उद्देश्य हिन्दू राष्ट्र को खोखला करके उसे नेस्तनाबूद करना है । जिन्ना और मुस्लिम लीग को इतना सर चढ़ाने के लिये गाँधी जिम्मेवार है । वह हिन्दी भाषा का—जो हिन्दू राष्ट्र की प्राण है — कट्टर दुश्मन और उर्दू और कुरान का सबसे बड़ा भक्त है । गौ रक्षा कानून का सबसे ज्यादा विरोध करने वाला वही है । उसने पश्चिमी पंजाब के दुखी और पीड़ित जनों को बुरा-भला कहा है, मगर कलकत्ता और बिहार के मुसलमानों को उसने अपनी जान हथेली पर रख कर बचाया । अब अपने मुसलमान भाइयों की रक्षा के लिये ही वह दिल्ली में पड़ा हुआ है ।

गुण्डों के सरताज़ और हिन्दुओं के सबसे बड़े दुश्मन सुहरा-वर्दी से वह मिल गया है। इसलिये गाँधी गद्दार भी है और गुण्डा भी।

हिन्दुओ और सिक्खो, अगर सचमुच तुम दुनियाँ में रहना चाहते हो तो उठो और इन राक्षसों के त्रिगुट्ट का खात्मा करो। दुनियाँ में वही कायम रह सकता है जो आगे बढ़ कर लड़े क्योंकि दुनिया ताकतवरों के लिये है। इसलिये, इस वर्ष की विजयादशमी इस युग के रावण का का बध करके मनाओ।

लेखक की ओर से—

बापू के निधन के पश्चात् लिखी गई मेरी यह तीसरी पुस्तक है। इसमें मैंने यह बतलाया है कि बापू की मृत्यु कब, क्यों और कैसे हुई? यही नहीं, मैंने दिखलाया है कि हत्या के इस षड्यन्त्र के पीछे किनका हाथ है? साथ ही मैंने बहुत संक्षेप में हिंद की संस्कृति के इतिहास की एक रूपरेखा दी है। मैं कॉंग्रेस की बुराइयों को दिखलाने में भी नहीं हिचकिचाया, क्योंकि मेरा विश्वास है कि अब ऐसा समय आ गया है कि हम जहाँ भी बुराइयाँ पायें, उनके विरुद्ध संग्राम छेड़ दें। पर मेरी आलोचना केवल ध्वंसात्मक नहीं है। मैंने सुझाया है कि हम, हमारे नेता और हमारी सरकार साम्प्रदायिकता के विष को बुझाने और फ़ासिज्म की लहर को रोकने के लिये क्या कर सकते हैं।

मैं यह आशा नहीं करता कि सभी पाठक मेरे मत से सहमत हो जायँगे। पर मेरा विश्वास है कि मेरी धारणा ठोस तथ्यों पर आधारित है। अतएव यदि पाठकों को कोई बात खटके या कोई उलझन मालूम दे, तो मेरा आग्रह है कि वह निसंकोच, संयत भाषा में उसे मेरे पास लिख भेजें। मैं यथाशक्ति उनके भ्रमों को मिटाने का प्रयत्न करूँगा। साथ ही मैं इस बात लिये भी तत्पर हूँ कि यदि मैं भूल करता होऊँ, तो बतलाये और समझाये जाने पर उसे मान लूँ।

यदि इस पुस्तक को पढ़ कर, थोड़े से व्यक्तियों ने भी समस्या के मर्म को समझ लिया और स्पष्ट सोचने और उसके अनुरूप कार्य करने का व्रत लिया, तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

२५-२-१९४८ नवीन नारायण अग्रवाल

विषय-सूची

बापू का बलिदान

हमारे लिए

खुली चुनौती है

: १ :

बापू शहीद हो गये

सायंकाल का समय था। जनवरी, १६४८ ई० का अन्तिम शुक्रवार था। मैं कालेज से लौटकर अपने एक सहयोगी के साथ कुछ बातें कर रहा था। इतने में ही अचानक देहली रेडियो स्टेशन ने अपना प्रोग्राम बन्द करके कुछ घोषणा की। हम लोग उसमें से केवल 'प्रार्थना-सभा' और 'गिर पड़े' शब्दों को ही सुन पाये। पर इन शब्दों ने ही हमारे ऊपर कुछ ऐसा असर कर दिया कि हम चौकन्ने होकर, एकाग्रता के साथ, यह सुनने को व्याकुल हो उठे कि हमारे बापू की 'प्रार्थना-सभा' में आखिर यह हो क्या गया! उस समय हमको इस बात का आभास तक न था कि हमारे नये राष्ट्र के ऊपर एक बड़ी भारी विपत्ति आ गई है!

पर हम अधिक समय तक भ्रम में न रहे। कुछ क्षणों के बाद ही हमने सुना कि रेडियो थोड़ी-थोड़ी देर बाद, समस्त संसार को, एक अत्यन्त आकस्मिक और दुख-भरी घटना की खबर सुना रहा था। हमारे बापू इस संसार से विदा ले चुके थे। एक सम्प्रदायवादी गुण्डे ने, प्रार्थना-सभा में, बहुत समीप से, अपनी पिस्तौल से धाँय-धाँय करके तीन फायर किये। जनता के सन्मुख, अभिवादन के लिए उठे हुए बापू के हाथ, उठे ही रह गये। वह कुछ झुके और फिर गिर पड़े। उनके मुख से 'राम-राम' शब्द निकले। तीन बार उन्होंने हिचकियाँ भरीं और फिर वे

संज्ञाविहीन हो गये। वहाँ से वे एक दम बिड़ला-भवन ले जाये गये। वहीं पर अपने गोली से बिंधे हृदय में 'जनहित' की कामना को लिये हुये उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। और जब उनकी आत्मा ने उस नश्वर शरीर से विदा ली, उस समय उनके चेहरे पर न तो कोई शोक के भाव थे और न क्षोभ अथवा क्रोध के। उनके भाव कुछ ऐसे थे मानो वह एक शान्तिपूर्ण मीठी नींद में सदैव के लिये सो गये हों।

इस समाचार ने हमारे तन-मन को झकझोर डाला, और अब हम शोक के सागर में डूब रहे हैं। अपनी दुर्बलता और असहाय अवस्था का स्मरण कर हमारा दिल बैठ जाता है। पर इसके साथ ही हमें इस बलिदान के रहस्य का भी लग रहा है.। गाँधीजी एक विशेष कारण से मार डाले गये हैं। यह कारण है—हिन्दू-मुस्लिम एकता में उनका अटल विश्वास। और अपने इस विश्वास को कार्य-रूप में परिणित करने के प्रयत्न में उन्हें अपने प्राण उत्सर्ग कर देने पड़े। इस प्रकार उन्हें, अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण, प्रतिगामियों ने इस संसार से उठा दिया। बापू ने एक शहीद की मौत पाई है।

: २ :

हिन्दू नामधारियों ने एक सच्चे हिन्दू को मार दिया

हमारे बापू अब नहीं रहे। उन्होंने अन्य शहीदों के समान ही कलेजे में गोली खाकर वीरगति पाई। उनको अचानक ही, बलप्रयोग कर, हमसे छीन लिया गया। हिन्दू-धर्म के नाम पर तथाकथित हिन्दू-धर्म के रक्षकों ने एक अत्यन्त निन्दनीय ढंग से बापू को इस संसार से उठा दिया। अपने को हिन्दू-धर्म का रक्षक बताने वाले अब यथार्थ में राक्षसपन पर उतर आये हैं। उन्होंने हिन्दू-धर्म तथा हिन्दू-संस्कृति का अपमान किया है। हिन्दू-धर्म के तत्त्व को समझने वाले महान् पुरुष को हिन्दुओं के इन जोशीले किन्तु नासमझ दोस्तों ने मौत के घाट उतार दिया है।

इन लोगों को हमें बता देना चाहिये कि वे हिन्दू-धर्म के रक्षक नहीं, वरन् भक्षक हैं। इन लोगों को हमें बतला देना चाहिये कि हिन्दू-धर्म में ऐसे पापियों का अब कोई स्थान नहीं हो सकता।

हिन्दू-धर्म का महत्त्व ही यह है कि वह सहिष्णुता, मानवता तथा विश्व-बन्धुत्व का पाठ पढ़ाने वाला है। जो लोग हिन्दू-धर्म के नाम पर वर्तमान, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक ढचरे को जैसा का तैसा बनाये रखना चाहते हैं, वे या तो हिन्दू-धर्म को नहीं समझते अथवा उसके नाम पर अपना स्वार्थ-साधन करना चाहते हैं।

हिन्दू-धर्म कभी यह नहीं कहता कि आपस में छूत-अछूत या

जाति-पाँति की भेद की दीवारें खड़ी कर मानव को छोटे-छोटे गिरोहों में बाँट दिया जाय।

हिन्दू-धर्म यह कभी नहीं कहता कि कुछ लोगों को अछूत बनाकर उनके साथ अत्याचार किया जाय। ये तो मानवता का खुला अपमान है। हिंदू-धर्म यह कभी नहीं कहता कि कुछ लोगों के हाथ में राजनीतिक सत्ता आ जावे और वह इस सत्ता का उपयोग कुकर्म करने तथा ऐश्वर्य-भोग करने में करें। हिन्दू धर्म केवल जनतंत्र को छोड़कर अन्य किसी प्रकार की शासन-प्रणाली को उचित नहीं समझता। यह तो इतना उदार धर्म है कि अनीश्वरवादियों तक को अपने यहाँ स्थान देता है। यह धर्म तो इतना व्यापक है कि उसके ३३ कोटि देवता हैं। कोई हिन्दू किसी एक को मानता है तो दूसरा किसी दूसरे को। कुछ हिन्दू अनेक को मानते हैं तो कुछ एक को भी नहीं। तो ऐसे उदार तथा व्यापक धर्म का किसी भी अन्य मत, धर्म या जाति से कैसे विरोध हो सकता है?

पर स्वार्थियों को धर्म के सच्चे स्वरूप से क्या मतलब! उन्हें तो अपना उल्लू सीधा करने से तात्पर्य! यही कारण है कि हिन्दू धर्म, तथा संस्कृति लगभग २५०० वर्ष से बराबर पतन की ओर जा रही है। हमने स्वार्थियों और मक्कारों की बातों का विश्वास कर अपने आदर्शों को छोड़ दिया। मानवता की डींग तो हम हाँकते रहे पर अपने अछूत भाइयों को हमने पशु से भी नीचा बनाकर रक्खा! विश्व-बन्धुत्व का राग तो हमने अलापा, पर अपने देश में आने वाले मुसलमान तथा ईसाइयों को हमने 'यवन', 'राक्षस', 'चाण्डाल' और न जाने क्या-क्या कहा! हमने न केवल समाज को ही जातियों तथा उपजातियों, छूत तथा अछूतों में बाँटा वरन् स्त्री-समाज को भी गुलाम बनाकर रक्खा! हमारे धर्म के ठेकेदार एक ओर तो कहते थे कि जिस घर में स्त्रियाँ सुखी नहीं रहतीं, वह घर नरक-तुल्य है, पर दूसरी ओर उन्होंने कहा कि नारी एक विष की बेल है और उसको सदैव दाब कर रखना चाहिये। बचपन में वह माँ-बाप का अधिकार माने, पत्नी हो जाने पर पति (देवता!) का और यदि वृद्ध होकर कहीं विधवा हो जाय तो पुत्रों को।

नारियों को दासता की बेड़ी में मजबूती से जकड़ने के लिए यह व्यवस्था दी गई कि यदि पुत्री विवाह के पूर्व पिता के घर में रजस्वला हो जाय तो पिता कुल नरकगामी होगा। इस प्रकार, समाज को ऐसा निर्बल बना दिया गया कि ब्राह्मणवाद* (Brahminism) के विरुद्ध कोई आवाज़ ही न उठा सके।

स्वार्थियों को इस षड्यन्त्र में तो सफलता मिल गई। पर इसका परिणाम भुगतना पड़ा, आने वाली सन्तानों को। राजाओं को ब्राह्मण-वाद ने इतना ऊँचा उठा दिया कि वे अपने को दैवी अवतार समझने लगे। उनका जीवन भोग-विलास की वस्तु बन गया। सुन्दर लड़कियों या धन के ऊपर आपस में लड़ाई होती थी। जनता को युद्ध में मरना-लड़ना पड़ता था और राजा लोग मौज़ उड़ाते थे। यही हमारे पतन का रहस्य है।

पर यह स्वार्थी षड्यन्त्रकारी इतने चालाक हैं कि वे किसी ईमानदार व्यक्ति को बोलने ही देना नहीं चाहते। जहाँ किसी ने सच्ची बातें कहीं कि ये हिन्दू धर्म और हिन्दुत्व का नाम लेकर आगे आ जाते हैं।

क्योंकि यह जानते हैं कि धर्म के नाम पर भोले-भाले लोगों को अब भी भड़काया जा सकता है। यही बात महात्मा गाँधी के साथ भी हुई। उनके ख़िलाफ़त आन्दोलन से तीन वर्गों के कान खड़े हो गये। एक तो शासक-वर्ग के और उसने फूट डालने की नीति को और भी तीव्र कर दिया। जगह-जगह दंगे कराये गये जिससे कहीं हिन्दुस्तानी एक न हो जायँ। इसमें सहायता मिली उन्हें हिन्दू पुरोहितों तथा धर्मान्धों से। अँगरेज़ ने इन्हें बतलाया कि यदि गाँधी की बात चल गई तो धर्म का सर्वनाश हो जायगा, मन्दिर भ्रष्ट हो जायँगे, अछूत सिर

---

* ब्राह्मणवाद का तात्पर्य ब्राह्मणों से नहीं है, वरन् उस विचार-धारा से है जो उत्पत्ति के आधार पर ब्राह्मणों को श्रेष्ठ ही नहीं मानती वरन् उनकी पूजा को भी सच्चा धर्म बतलाती है।

पर चढ़ने लगेंगे और उनकी भी रोजी मारी जायगी। दूसरी ओर, मुसलमान कठमुल्लाओं को समझाया गया कि ईसाई धर्म और इस्लाम में बड़ी समीपता है। हिन्दू हम दोनों के ही दुश्मन हैं। जाओ, तलवार हाथों में ले लो और काफ़िरों को नष्ट कर दो। भोले-भाले मोपला लोग मलाबार में इस झाँसे में आ गये और विद्रोह कर बैठे। उन्होंने हिंदुओं को हानि ही नहीं पहुँचाई वरन् उन पर अत्याचार भी किये। इस कहानी को फिर बढ़ा-चढ़ाकर अँगरेजों ने सारे देश में फैला दिया। बस फिर क्या था। सन् १९२३–२६ के बीच दंगों की वह बाढ़ आई कि सारे देश हैरत में रह गया। गाँधीजी के किये-कराये पर पानी फेर दिया गया। मरी हुई मुस्लिम लीग में फिर से जान आ गई। साथ ही सन् १९२३ में हिन्दू महासभा और सन् १९२४ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापनायें हो गईं*। ऐसे ही समय 'अकाली पार्टी' भी बन गई। अँगरेजों की फूट नीति काम कर रही थी। जाने या अनजाने में, यह सम्प्रदायवादी संस्थायें अँगरेजों का स्वार्थ-साधन कर रहीं थीं।

पर गाँधीजी डरे नहीं। वह अविचलित भाव से अपने मार्ग पर चलते रहे। जैसे-जैसे उन्हें सफलता मिलती जाती थी, वैसे-वैसे दंगे भी बढ़ते जाते थे। सम्प्रदायवाद के जहर से राष्ट्रीयता की लहर को दबा देने का प्रयत्न किया जा रहा था। पर हम न समझे और अँगरेजों ने इससे भरपूर फायदा उठाया। हमें लार्ड बिरकनहैड ने चुनौती दी कि तुम लोग मिलकर कुछ नहीं कर सकते। यदि तुम एक सर्व-सम्मति विधान बना सको तो हम उसे मान लेंगे। नेहरू रिपोर्ट बनी भी, पर अँगरेज जब तक 'सोने की चिड़िया', भारत में जरा भी जान बाकी थी, उसे कैसे छोड़ देते।

परिणाम यह हुआ कि सम्प्रदायवाद का दानव शक्तिशाली होता गया। यद्यपि वह राष्ट्रीयता की लहर को न दबा सका, पर उसने

---

* राष्ट्रीय स्वयंसेवक की विचारधारा, कार्यशैली और वर्तमान षड्यन्त्र में उसका हाथ जानने के लिये पढ़िये मेरी पुस्तक 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ क्या है ?'

इस आन्दोलन को ठेस तो काफी पहुँचाई ही। यही नहीं, इस दानव का असर कट्टर गाँधी-भक्तों तक पर पड़ने लगा। परिणाम यह हुआ कि जहाँ हमें स्वाधीनता मिली, उसके साथ 'पाकिस्तान' भी मिला। यही नहीं, पाकिस्तान बनने के आगे और पीछे हमें एक भयङ्कर रक्तपात भी भेंट में मिला।

पर इस कीमत को चुका कर भी हमने बापू की बात न मानी। सभी मतवाले हो रहे थे। सभी सम्प्रदायवादी गुण्डागीरी पर उतर आये थे। सच्चे काँग्रेसी देखने को भी न मिलते थे, यद्यपि काँग्रेस-नामधारियों का बोलबाला था। काँग्रेस के मंच से कार्य-समिति के सदस्य तक जहर उगलते थे। काँग्रेस की नगर-रक्षिणी-सभायें हथियार एकत्रित कर, सम्प्रदायवाद का साथ दे रही थीं*। काँग्रेस के आदेशानुसार न तो 'शान्ति-सेना' बन सकीं और न 'शान्ति सभायें' हुईं। ऊपर के आदेशों का खुले आम उल्लंघन हो रहा था। श्रीकृष्णदत्त पालीवालजी तक को यह स्वीकार करना पड़ा कि जितने हथियार हिन्दुओं ने एकत्रित कर रक्खे हैं, उसकी तुलना में मुसलमानों के पास तो कुछ भी हथियार नहीं निकलेंगे।

गाँधीजी ने इन सबके विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने जहाँ मुस्लिम लीग की नीति का विरोध किया, वहाँ खुले आम अकाली पार्टी महासभा तथा सङ्घ का भी विरोध किया। यही नहीं, उन्होंने नवम्बर, १९४७ की काँग्रेस की कार्य-समिति की बैठक में उन काँग्रेसियों की भी निन्दा की जो सङ्घ को बढ़ावा दे रहे थे और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुसलमानों के प्रति अविश्वास करने की बात कह रहे थे। पर उन्हें यह पता लग गया कि काँग्रेस में यह विष बड़ी दूर तक फैल गया है। सरदार पटेल उनकी बात सुनते तक न थे। इन सब बातों से तंग आकर अपनी मृत्यु से एक घण्टे पूर्व गाँधीजी यह बतला गये कि काँग्रेस को एक राजनीतिक संस्था के रूप में भंग कर दिया जाय। उसका कार्य

---

* यदि पं० नेहरू चाहें तो मैं इसके लिये प्रमाण प्रस्तुत कर सकता हूँ।

भविष्य में केवल प्रचार और क्रियात्मक सुधार रहे। उसका उद्देश्य सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में जनतंत्र लाना रहे*। गाँधीजी को आशा थी कि वह अपने सन्मुख ही यह सब देख सकेंगे। पर ऐसा न होना था।

हिन्दुत्व के ठेकेदारों ने गाँधीजी को अपनी गुण्डागीरी का शिकार बनाकर हिन्दू-धर्म की आत्मा को कुचल डाला। उनकी वाणी को ऐसे लोगों ने बन्द कर दिया जो स्वयं तो हिन्दू-धर्म का मर्म समझते नहीं, पर उसकी आड़ में स्वार्थ-साधन करना चाहते हैं। कहते हैं कि एक मूर्ख मित्र से समझदार दुश्मन अच्छा होता है। तो इन नामधारी हिन्दू-रक्षकों को हमें बतला देना चाहिये कि वे हिन्दुओं के दुश्मन हैं। यदि उनके हिन्दू-धर्म का तात्पर्य हिंसा, घृणा, झूठी शान और भेद-भाव का प्रचार है, तो हम लोगों को अपने को हिन्दू कहना छोड़ देना पड़ेगा। अतएव, अच्छा होगा कि इस प्रकार की विचारधारा को सदैव के लिये दफ़ना दिया जाय।

पर यथार्थ में हिन्दू धर्म का तात्पर्य ये लोग समझते नहीं। हिन्दू धर्म अत्यन्त उदार तथा व्यापक है। इसने बलपूर्वक मत-परिवर्तन में कभी विश्वास नहीं किया। तभी तो मिसेज ऐनी बीसेण्ट ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और इसे एक अत्यन्त विकसित धर्म कहा। पर अब इसको इसके नादान मित्रों ने 'प्रतिक्रियावाद' और 'सामाजिक सड़ायँद' का पर्यायवाची बना दिया है। उन्होंने धर्मान्धता के साथ हिन्दू-धर्म का नाम जोड़कर इसका अपमान किया है। अच्छा है कि समय रहते हम चेत जायँ। हिन्दू धर्म का भविष्य इसी पर निर्भर है कि वह प्रतिक्रियावाद और धर्मान्धता के साथ अपना नाता जोड़ता है अथवा उदारता और प्रगति के साथ। यदि हमारे बापू सर्वोत्कृष्ट हिन्दू

---

* आसार यह दिखलाई दे रहे हैं कि गाँधीजी की इस अन्तिम इच्छा को भी पूरा नहीं किया जायगा और स्वार्थी लोग आगे से काँग्रेस और गाँधीजी के नाम पर सम्प्रदायवाद और प्रतिक्रियावाद को खुला प्रोत्साहन देंगे। इस प्रकार, जिन कारणों से बापू काँग्रेस को समाप्त करना चाहते थे, वह दूर न हो सकेंगे।

नहीं थे, तो हिन्दू धर्म जीवित रहने के लायक भी नहीं है।

पर हमारा विश्वास है कि इन प्रतिक्रियावादियों और धर्मान्धों के मर जाने पर भी हिन्दू धर्म जीवित रहेगा। आने वाली सन्तानें हिन्दू धर्म का केवल इसलिए आदर करेंगी कि उसने महात्मा गाँधी जैसा एक महान पुरुष संसार को दिया। सचमुच ही, गाँधीजी में यथार्थवाद और अध्यात्मवाद का वह सुन्दर सम्मिश्रण था जो प्रभावोत्पादक होने के साथ ही अत्यन्त आश्चर्यजनक था। इसी सुन्दर सामंजस्य के कारण गाँधीजी को समस्त संसार ने सराहा। पर हमारे लोगों ने उन्हें न समझ कर मार दिया।

गाँधीजी ने हमें बतलाया कि जो लोग यह कहते हैं कि धर्म तथा राजनीति का कोई आपसी सम्बन्ध नहीं और धार्मिक पुरुषों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिये, वे धर्म के मर्म को नहीं समझते। एक सच्चा धार्मिक व्यक्ति बिना राजनीति में पड़े रह ही नहीं सकता। धर्म यदि मनुष्य को, यथार्थ जीवन में, पीड़ितों के हित के लिये, कार्य करने की प्रेरणा नहीं देता तो उसे 'धर्म' का नाम देना ही अनुचित है। और चाहे वह कुछ भी हो, पर उसे धर्म का नाम नहीं दिया जा सकता।

गाँधीजी सच्चे माने में एक ऋषि और महात्मा थे। वह उन महात्माओं में से न थे जो अपने मङ्गल की कामना लिये हुये, इस संसार को त्याग जंगल में चले जाते हैं और वहाँ स्वयं मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें यह मार्ग अरुचिकर थे। वह अपने मन में इतना स्वार्थ भी रखना पसन्द न करते थे। उनका कहना था कि यदि मुझ अकेले को स्वर्ग मिले और मेरे देशवासी वहाँ न जा सकें तो ऐसा स्वर्ग मुझे नहीं चाहिये! क्या इससे भी ऊँची कोई निस्वार्थ भावना हो सकती है? क्या इससे भी ऊँचा कोई मानवी दृष्टिकोण हो सकता है? पर ऐसे ही महान पुरुष को सम्प्रदायवादियों ने 'कुत्ता', 'गुण्डा', 'रावण' आदि विशेषणों से ही विभूषित नहीं किया, वरन् अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिये, हिन्दू संगठन और हिन्दू रक्षा के नाम पर, उन्होंने हमारे बापू को मौत के घाट उतार दिया।

कुछ व्यक्तियों को गाँधीजी रहस्यवादी लगते थे। हो सकता है कि वे रहस्यवादी हों, पर उनका रहस्यवाद अनूठा था। रहस्यवाद का स्वाँग रचकर उन्होंने जीवन की कठिनाइयों से कभी मुख नहीं मोड़ा और न कभी जीवन की यथार्थता से ही उन्होंने बचने का प्रयत्न किया। वह किसी बाहरी स्वर्ग की आकांक्षा न रख इस पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाने का स्वप्न देख रहे थे। उनके हृदय में जन-साधारण के लिये अगाध प्यार था। वह 'दरिद्रनारायण' की सेवा में अपना सब कुछ लगा देना चाहते थे।

इसी जनहित की भावना के कारण, वह दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की दुर्दशा देखकर रुक गये। वहीं उन्होंने अपने सत्याग्रह के उस प्रयोग को किया जो अब मानवता के लिये उनकी एक स्थायी देन मानी जाती है। उन्होंने ग़रीब तथा मूक जनता को एक ऐसा अस्त्र दिया जिसके द्वारा बड़े-बड़े अत्याचारी को झुका सकते थे। उन्होंने इस अविश्वासी दुनियाँ को यह दिखला दिया कि निशस्त्र जनता भी सफलता पूर्वक अत्याचार और अन्याय का विरोध कर सकती है। इसी प्रबल भावना ने उनको भारतवर्ष में आने पर राजनीति में ला पटका।

हम कह आये हैं कि गाँधीजी ने वास्तविकता से कभी मुँह नहीं मोड़ा। वह इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि जब तक भारतीय सामाजिक संगठन में, जाति-प्रथा और सम्प्रदाय-भेद के रूप में, पड़ी दरारें बन्द नहीं कर दी जातीं, हिन्दुस्तान की उन्नति अत्यन्त कठिन है। यही कारण है कि वह अन्त समय तक साम्प्रदायिक मेल-जोल का प्रचार करते रहे। यही कारण था कि वह धर्म-परिवर्तन पसन्द न करते थे। उनका कहना था कि अपने धर्म में रहकर यदि व्यक्ति दूसरे धर्मों की की महानता समझना सीख जाय, तो इससे समाज का भी कल्याण होगा। धर्म-परिवर्तन करने से असहिष्णुता पैदा होती है, धर्मों की अच्छाई-बुराई के विचार पैदा होते हैं और आपसी सम्बन्धों का ठीक रहना कठिन हो जाता है।

इसी सामान्य हित की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने १६१६ ई०

में खिलाफ़त तथा पञ्जाब हत्याकाण्ड के प्रश्नों को मिलाकर उठाया। यहाँ तक कि मोपलाओं के विद्रोह करके हिन्दुओं को हानि पहुँचाने पर भी वह न डिगे। वह इस तरह की सभी चालों को समझ गये थे। इसी एकता की भावना से प्रेरित होकर सन् १९३२ में उन्होंने रेमजे मेकडानल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय को बदलवाने के लिये आमरण उपवास किया। उस समय भी प्रतिगामियों ने उन पर, पूना में एक भयङ्कर बम्ब फेंका था। और अब भारतीय तथा हिन्दू सङ्गठन के नाम पर हत्या करा दी!

एकता तथा जनहित की भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने 'श्री राजगोपालाचारी की योजना' मान ली। यदि देश के विभाजन से ही यह साम्प्रदायिक समस्या हल होती है तो इसे भाई भाई के बीच-जैसा बँटवारा कर लो, जो केवल इस कारण पृथक होते हैं कि वे आपसी सम्बन्धों को अच्छा बनाये रक्खे। पर भारत का यह दुर्भाग्य है कि उनकी बात न तो मि० जिन्ना ने मानी और न काँग्रेस ने। उसे मान लेने से आज यह भीषण रक्तपात और बर्बरता का यह नंगा नाच न होता। पर उस समय सभी अपनी-अपनी जिदों पर अड़े थे। कोई भी समझौता न करना चाहता था। अतएव गति-अवरोध प्रारम्भ हो गया। इसे हटाने के बापू के सभी प्रयत्न निष्फल हुये। बापूजी को दुख होता था। पर उन्होंने न तो कभी आशा का परित्याग किया और न हिम्मत ही हारी। वह अकेले ही मोर्चे पर डटे रहे।

उनकी योजना असफल हो गई। कलकत्ता तथा नौआखाली में भयङ्कर रक्तपात प्रारम्भ हो गया। सारा देश आश्चर्य, भय तथा क्रोध में आ गया। पर हिन्दू-धर्म, संस्कृति के रक्षकों और हिन्दुत्व के प्रचारकों में से किसी की यह हिम्मत न पड़ी कि वहाँ जाकर कुछ कार्य करे। उस समय बापू ने संसार को यह कहकर चौंका दिया कि वह अपने भूले देशवासियों को समझाने के लिये नौआखाली जा रहे हैं। और जब उन्होंने यह सुना कि वह बिना किसी हथियार, बिना पुलिस की सहायता के जा रहे हैं तो बहुतों ने कहा कि गाँधी सठिया गया है। बापू को सलाह दी गई कि इस प्रकार आपका जाना अनुचित है। बापू ने

धन्यवाद देकर इस सलाह को मानने से इन्कार कर दिया। उन्होंने उस समय के बङ्गाल के मुस्लिम लीगी प्रधान मन्त्री, सुहरावर्दी साहब से भी बहुत कहा कि अपने फ़ौजी दस्ते हटा लो, नहीं तो मेरे प्रयत्न असफल हो जायँगे। लोग कहेंगे कि अहिंसा में विश्वास रखने वाला गाँधी साथ में फ़ौज लेकर आया है। दुनिया हैरत में थी कैसे एक दुबला और बूढ़ा आदमी, जिसे हिन्दवासी महात्मा कहते हैं, सशस्त्र मुसलमानों को समझा पायगा। और वह आदमी भी कौन था? वह था एक ऐसा व्यक्ति जिसको मि० जिन्ना सदा मुसलमानों का कट्टर दुश्मन कहते आये थे।

गाँधीजी नौआखाली गये। पर सम्प्रदायवादियों को यह अच्छा न लगा। इस बार हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने बिहार में दंगा करा दिया। बापू के हृदय पर यह एक करारी चोट थी। इस विश्वासघात से वह तिलमिला उठे। काँग्रेसी राज्य में सम्प्रदायवादी दंगे हों! क्या हो गया है काँग्रेस और उसके प्रभाव का? उन्होंने अपना नैतिक दबाव डाला। पंडित नेहरू भी वहाँ भागे गये। लोगों ने उन्हें गालियाँ दीं, काले झण्डे दिखलाये। पर नेहरू ने ललकार कहा कि 'मेरे शरीर को रौंदकर ही तुम आगे बढ़ सकते हो, इसके पहले नहीं।' सम्प्रदायवादी इस आत्मबल का मुकाबला न कर सके। वे पीछे हट गये।

पर उनका विषैला प्रचार जारी रहा। उनका दूसरा वार गढ़-मुक्तेश्वर में हुआ। इसमें मारा गया कौन? मुस्लिम सम्प्रदायवादी नहीं, वरन् वे भोले-भाले मुसलमान जो गंगातट पर कुछ लाभ की आशा से एकत्रित हुये थे। वे राष्ट्रीय मुसलमान जिन्होंने सब तरह का अपमान सहकर भी पाकिस्तान का विरोध किया था! और हमारी काँग्रेसी सरकार इन लोगों की रक्षा न कर सकी!

पर घटनाचक्र बड़ी तेज़ी से चला रहा था। देहली में भी कत्ले-आम शुरू हो गया। बड़ी तेज़ी से भरतपुर के गुण्डों ने देहली से सारे भारत के सम्बन्ध काट देने का निश्चय कर लिया। योजना यह बतलाई जाती है कि अलवर, ग्वालियर, भरतपुर, धौलपुर इत्यादि सभी ने

मिलकर एक साथ देहली पर धावा बोलकर नेहरू सरकार को पलटने का षड्यन्त्र रच रक्खा था। देहली के फ़ौजी* अपने उन अफ़सरों तक को मौत के घाट उतार देते थे जो इस गुण्डागीरी का विरोध करते थे। गाँधीजी की आत्मा तड़प कर रह जाती थी।

इन सब बातों को देखकर उन्होंने निश्चय किया कि वे भारत की राजधानी, देहली में ही अपना निवास-स्थान बनायेंगे जिससे केन्द्रीय सरकार के काँग्रेसी मन्त्रियों में कर्त्तव्य का भाव जाग्रत कर सकें। गाँधीजी यह जान चुके थे कि काँग्रेस तेज़ी से पतन की ओर जा रही है।

इस जड़ता से लोगों को जगाने के लिये गाँधीजी ने उपवास रक्खा। वृद्धावस्था, कृश शरीर, दुखित हृदय और शीघ्र मर जाने की साध लेकर गाँधीजी ने उपवास किया। उन्होंने कहा कि मुझे वैसे ही तिल-तिल करके मारा जा रहा है; क्यों न मैं फिर एक बारगी ही चला जाऊँ! इस समय भी प्रतिगामी लोग बिड़ला भवन तक पहुँच जाते थे और आवाज़ लगाते कि—'गाँधी को मर जाने दो।'

पर गाँधी को ऐसे न मरना था। उसको तो एक शहीद की मौत प्यारी थी। कुछ लोगों की आत्मा में कुछ जागरण हुआ। कुछ ने सच्ची और कुछ ने झूठी प्रतिज्ञायें कीं कि वे उनका कार्य पूरा करेंगे। इस आश्वासन को पाकर उन्होंने व्रत तोड़ दिया। इस आश्वासन के बाद उनके हृदय में फिर १२५ वर्ष जीवित रहने की अभिलाषा जाग्रत होगई। वे पाकिस्तान जाकर अपना कार्य पूरा करना चाहते थे।

पर प्रतिगामियों को यह बात बुरी लगी। उन्होंने आशा लगा रक्खी थी कि बुड्ढा इस व्रत में मर जायगा। पर वह तो मरा नहीं। यही नहीं, वह तो पाकिस्तान जाकर वहाँ भी प्रचार करने के मन्सूबे बाँध रहा था। यदि ऐसा हो गया तो उन्हें कौन पूछेगा? फिर काश्मीर का प्रश्न उठा कर कैसे वह लोगों को मूर्ख बना सकेंगे? उन्होंने बापू को इस संसार से

* मि० मिश्रा की मौत इसी प्रकार हुई थी।

उठा देने के पुराने निश्चय को कार्य रूप में परिणित करने की ठान ली। और अब बापू नहीं रहे! हमें स्वाधीनता दिला कर हमारा सेनापति हमें छोड़कर चला गया! पर वह स्वेच्छा से नहीं गया। उसे बलपूर्वक हटा दिया गया। क्यों? इसलिये कि कुछ व्यक्ति राजनीतिक सत्ता लेने या बनाये रखने के लिये उतावले हो उठे थे!

पर क्या गाँधीजी के चले जाने से उसका कार्य अधूरा रह जायगा? क्या उनके इन विचारों को पूरा करने वाला कोई न रहेगा? क्या हम अपने बापू, राष्ट्रपिता को भूल जायेंगे? नहीं, हम उन्हें कभी भी नहीं भुला सकते। हमें उन्हें कभी भी नहीं भुलाना चाहिये! हम उन्हें नहीं भुलायेंगे! हम उनके साम्प्रदायिक एकता, हरिजन आन्दोलन और सामाजिक तथा आर्थिक जनतंत्र लाने के कार्यक्रम को पूरा करेंगे। वे सदा हमारे साथ रहेंगे। उनका पार्थिव शरीर न सही, उनकी आत्मा हमारे साथ रहेगी। हमें इस समय उनकी बड़ी आवश्यकता है।

तो हमें साहस नहीं खोना और न हार मानकर बैठकर जाना है। दिक्कतें आयेंगी, तकलीफें सहनी पड़ेंगी; पर उन्हें हम सह लेंगे। पर बापू के उपरोक्त कार्यों को हम पूरा करके रहेंगे। समय आ गया है कि हम केवल उनकी जय का नारा न लगाकर, उनके योग्य बनाने का प्रयत्न करें। उनका आशीर्वाद हमारे साथ है और पवित्र आत्माओं का आशीर्वाद कभी वृथा नहीं जाता।

३ :

हमारे समाज के पतन की कहानी

आपने देखा कि सच्चा हिन्दू धर्म सहिष्णुता, मानवता और विश्व-बंधुत्व का पाठ पढ़ाने वाला है। वह समानता तथा स्वतंत्रता का पोषक है। किन्तु वही धर्म बाद में बड़ा विकृत हो गया। हम धर्म को तो भूल गये और उसके बाह्य आडम्बरों को ही महत्व देने लगे। परिणाम यह हुआ कि धर्म के नाम पर अनेक कुरीतियों तथा रूढ़ियों का समर्थन किया जाने लगा। यह आश्चर्य इस कारण और भी बढ़ जाता है कि पुराने शास्त्रों में इन कुरीतियों तथा रूढ़ियों के विरुद्ध हमें स्पष्टतः सावधान भी किया गया है। फिर, क्यों हम इस पतन के गहरे गढ़े में गिर गये ?

आदर्श और व्यवहार

सच बात तो यह है कि हमारा आदर्श तो ऊँचा रहा, पर व्यवहार जगत् में हम अपने को उन आदर्शों के अनुरूप न बना सके। पर यदि हम उन महान् आदर्शों को सदा अपने सन्मुख रखते तो भी अच्छा होता। पर हम यह भी न कर सके। हम आदर्श के नाम पर यथार्थता को ही ठीक समझने लगे। अतएव हमारा समाज ऊँचा उठने के स्थान पर दिनों-दिन नीचे गिरने लगा।

यद्यपि हमारा आदर्श विश्व-बंधुत्व का रहा, तथापि हमारे इतिहास में ऐसा कोई भी प्रमाण नहीं मिलता जिसके आधार पर यह

कहा जा सके कि भारतवर्ष में कभी ऐसा भी कोई युग था जब सभी मनुष्य एक बराबर समझे जाते थे। प्राचीन समाज तक में द्विजों तथा शूद्रों का भेद स्पष्ट रूप से पाया जाता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यद्यपि हम व्यवहार में शूद्रों के साथ बराबरी नहीं मानते थे, फिर भी हमारे कुछ महान् ऋषि-मुनि हुए जिन्होंने भेदभाव के विरुद्ध आवाज़ उठाई और विश्व-बंधुत्व का दृष्टिकोण अपनाने को कहा। महाराज रामचन्द्रजी के समकालीन वाल्मीकिजी इसी प्रकार के एक मुनि थे।

शूद्र कौन थे ?

इन 'शूद्र' कहे जाने वाले व्यक्तियों के विषय में अनेक भ्रांतियाँ लोगों ने फैला रक्खी हैं। पर अब सभी समझदार व्यक्ति इस बात को स्वीकार करते हैं कि अधिकतर इन लोगों में वे द्रविड़ों के झुण्ड थे जिन्होंने आर्य-भाषा-भाषी व्यक्तियों* का युद्ध में कड़ा मुकाबला किया था। ये लोग हार गये और हार जाने पर पुरानी प्रथा के अनुसार ये 'दास' बना लिये गये। सर राधाकृष्णन् ने इतिहास की नाजानकारी के कारण यह लिख मारा है कि यह लोग जंगली थे। अतएव इन्हें समाज में सबसे नीचा दर्जा दे दिया गया। † वह यहाँ तक कहते हैं कि यह ढंग जनतंत्रीय था‡। उनका यह विचार एक भ्रान्त धारणा पर आधारित है। इसी कारण मि० के० एम० पनीकर ने उनकी कड़ी आलोचना

---

* 'आर्य' नाम की जाति कभी न रही और न है। इस विषय में विस्तार से जानना चाहें तो देखिये मेरी पुस्तक 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ क्या है?' (फरवरी. १९४८), पृष्ठ ४१-४२

† देखिये Sir S. Radhakrishnan, 'Hindu View of Life'. P. 95.

की है ‡। वास्तव में यह बड़े ही दुख तथा आश्चर्य की बात है कि हमारे हृदय ऐसे पत्थर के हो गये हैं कि लगभग ३५०० वर्ष से हम जिन्हें सताते रहे, उनके लिये हमारे मन में पाश्चाताप तक नहीं होता। यही नहीं, विद्वान लोग तक इस क्रूरता को छिपा जाना चाहते हैं। हमें अब शर्म के साथ यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि मानवता का आदर्श सामने रखने वाले हम हिन्दुओं ने मानवता का जितना बड़ा अपमान किया, उसकी जोड़ी की मिसाल संसार के इतिहास में दूसरी नहीं मिलती।

और यह व्यवहार किया हमने किसके साथ? भारतवर्ष के उन मूल निवासियों के साथ § जिनकी सभ्यता आर्यों से बहुत बड़ी-चढ़ी थी। हड़प्पा और मोहन्जदड़ों की खोजों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि आर्यों के आने के पूर्व जो लोग भारत के निवासी थे उनकी सभ्यता बहुत ऊँची थी। बाद में पतन शुरू हुआ।

पर यह पतन हुआ क्यों? क्यों द्रविडों की इतनी बड़ी सभ्यता नष्ट हो गई? यह प्रश्न ऐसे हैं जिनका उत्तर अभी तक सन्तोषजनक ढंग से नहीं दिया गया। पर यदि हम तथ्यों के आधार पर चलें तो एक धुँधली-सी रूपरेखा हमारे सामने बन जाती है।

आर्यों का आगमन

आर्य-भाषा-भाषी भारतवर्ष में एक बारगी ही नहीं आये। वह कई बार में आये। इस बात से अब सभी सहमत हैं कि आर्य लोग

---

‡ देखिये K. M. Panikkar, 'Hinduism and the Modern World', (Allahabad, 1938), P. 40–50.

§ एक बात को अनुदार लेखक S. V. Puntambekar तक को अपनी पुस्तक An Introduction to Indian citizenship and Civilisation (Benaras, 1928) में पृष्ठ १७३—१७४ पर स्वीकार करना पड़ा है।

अपेक्षाकृत पिछड़े थे। न तो उनकी सभ्यता द्रविड़ों की सभ्यता के समान ऊँची थी और न उस रोमन-सभ्यता के समान ही जिसे बहुत बाद में इन्हीं लोगों ने नष्ट कर दिया। इनके सामाजिक ढाँचे मे भेद-भाव स्वीकार किये जाते थे। कुछ परिवार उच्च तथा कुलीन माने जाते थे और कुछ साधारण *।

ऐसा प्रतीत होता है कि पहली बार में आने वाले आर्य कुछ दिन बाद लड़-भिड़ कर एक हो गये। इन दो सभ्यताओं के सुन्दर समन्वय से एक महान सभ्यता का उदय हुआ। मेरा अपना मत यह है कि हड़प्पा तथा मोहनजदड़ों की सभ्यता इसी युग की प्रतीक है।

पर इस सभ्यता का तो अंत होना था। इसका अंत किया नये आर्यों ने आकर। इन नये आर्यों ने युद्ध में पुराने आर्य और मूल निवासी द्रविड़ों की सम्मिलित शक्ति को मात दी। हो सकता है कि पुराने आर्यों में से कुछ ने इन नये आर्यों का साथ देकर विजय-माल नये आर्यों को पहना दी हो।

इस समय का इतिहास स्पष्ट नहीं है। पर इस हार का जो परिणाम हुआ, वह स्पष्ट है। नये आर्य प्राचीन सभ्यता को पचा न सके। धार्मिक मतभेद और राजनीतिक संघर्ष होने के कारण उन्होंने सब कुछ नष्ट कर डाला। अतएव भौतिक क्षेत्र में हमारी उन्नति रुक गई।

इसका एक विशेष कारण भी था। आर्य लोग 'सादा जीवन' में विश्वास रखते थे। वे शरीर से अधिक आत्मा को महत्व देते थे। अतएव उन्होंने यदि उस सभ्यता को न समझ पाया जो भौतिक सुखों को प्रधानता देती थी तो क्या आश्चर्य ?

चार वर्ण

आर्यों ने आकर अपने कुलीनता के भाव को और भी फैलाया।

---

* देखिये H. G. Wells, 'A Short History of the World, (London, 1938), pp. 65–68.

प्रारम्भ में इसका रूप और आधार केवल शरीर के रंग के ऊपर था। अतएव 'वर्ण' यानी रंग के आधार पर भेद किये जाने लगे। विशुद्ध द्रविड़ों को जो काले थे सबसे नीचा रक्खा गया। मिश्रित लोगों को उसके बाद स्थान दिया गया। तत्पश्चात् शुद्ध वर्ण के लोग आये।

फिर, शुद्ध वर्ण के लोग भी कर्म के अनुसार तीन गिरोहों में बँट गये। भजन-उपासना करने वाले ब्राह्मण कहलाये, लड़ने वाले सिपाही क्षत्रिय कहलाये और आर्थिक जीवन में लगे रहने वाले वैश्य। पर यह भेद तो एक मोटा-सा था। सचमुच तो सारा समाज हज़ारों कबीलों (Tribes) में बँटा था। मोटे तौर पर ये कबीले किसी न किसी 'वर्ण' के अंतर्गत आते थे। प्रत्येक कबीले के पृथक रीति-रिवाज़ होते थे। भारतवर्ष में तो यही बात आज तक चली आ रही है।

जाति-व्यवस्था

धीरे-धीरे यह 'वर्ण' व्यवस्था जातियों का रूप धारण करने लगी। सबसे पहले ब्राह्मणों की एक जाति पृथक् हो गई। आर्य लोग धर्म-प्रधान थे ही। अतएव धर्म तथा कर्म-काण्ड में लगे रहने वाले व्यक्तियों का समुदाय धीरे-धीरे अलग हो गया। बहुत दिनों तक यह तो होता रहा कि व्यक्ति-विशेष को कर्म के आधार पर ब्राह्मण मान लिया जाय। पर व्यापक नियम तो यही हो गया कि ब्राह्मणों की सन्तानें ही ब्राह्मण कहलाने की अधिकारी हैं। पर ब्राह्मण एक संगठित जाति न थे। प्रत्येक कबीला एक उपजाति बन गई।

क्षत्रियों के इतिहास पर दृष्टिपात करने से एक आश्चर्यजनक बात का पता लगता है। मि० पनीक्कर ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया है। वह कहते हैं कि जितने भी प्राचीन महान् राजघराने हुए, उनमें कोई भी क्षत्रिय न था। मौर्य लोग शूद्र थे, गुप्त लोग जाट थे, थानेश्वस वंश वैश्य था। न जाने ३२० ई० पू० और ६३७ ई० के बीच में

क्षत्रिय घराने कहाँ लुप्त हो गये* ? पर आज तो सभी वे जातियाँ जो सामाजिक पद में अपने को ऊँचा उठाना चाहती हैं, क्षत्रिय होने का दम भरती हैं। यहाँ तक कि कायस्थ भी अब क्षत्रिय बनना चाहते हैं।

इसी प्रकार से वैश्यों के बारे में कोई ठीक इतिहास नहीं मिलता। यही नहीं, एक बात और भी बड़ी आश्चर्यजनक है कि प्रारम्भ से ही किसी भी जाति के सभी मनुष्यों ने केवल अपने कार्यों तक ही अपने को सीमित नहीं रक्खा। जातकों में ब्राह्मण व्यापारियों, शिकारियों आदि का वर्णन है§। यही बात अन्य जातियों के बारे में भी है। उपरोक्त बातों से कुछ विद्वान् तो इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि हिन्दू समाज में आर्यों के आने के बाद से हजारों कबीले यानी उपजातियाँ थी जिनके खान-पान, रहन-सहन तथा रीति-रिवाज पृथक थे। चार संगठित जातियाँ कभी नहीं थीं। इस धारणा के विरुद्ध कोई भी ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता ‡

---

* देखिये के० एम० पनीक्कर की ऊपर बतलाई गई पुस्तक पृष्ठ १६-३५. वह कहते हैं : The great royal families of whom we have record, were none of them K. shatriyas. The Mauryas—the first imperial dynasty whose achievements are known to us—were Sudras. The Vakatakas and Barasives were Brahmins : the Guptas were Jats. The Thaneswas dynasty belonged to the Vaisya Caste. Where did the Kshatriya community disappear in the thousand years between Chandra Gupta Maurya (320 B. C.), and Harsh Vardhan ? (637 A. D.), pp. 20-21

§ देखिये पनीक्कर की पुस्तक, पृष्ठ २३

‡ उपरोक्त, पृष्ठ २५

वेद जातियों को नहीं मानते

हिन्दुओं के प्राचीनतम धार्मिक ग्रंथ ऋग्वेद में जातियों का कोई वर्णन नहीं है, यद्यपि श्रेणियों का वर्णन अवश्य है§। स्वामी दयानन्द सरस्वती का भी यही मत है। तो यदि वेद जातियों को नहीं मानते, तो जातियाँ और छूत-अछूत की भावना धर्म का एक अंग कैसे बन गई? श्री भगवद्गीता में स्पष्ट विरोध होने पर भी लोग क्यों भ्रम में आ गये? गीता में चौथे अध्याय में कहा गया है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः

इसके अर्थ यह होते हैं कि 'मैंने इस सृष्टि को गुण तथा कर्म के आधार पर चार वर्णों में विभाजित किया है।' उसमें कहीं ऊँच-नीच की भावना का समर्थन नहीं किया गया। फिर कैसे यह भावना पैदा हो गई? और वह भी इतनी विकट रूप में कि ब्राह्मणों में आज लगभग १६०० उपजातियाँ हैं जो अपने को एक-दूसरे से ऊँचा ही नहीं मानतीं वरन् इनमें से बहुत-सी आपस में भी खानपान नहीं रखतीं! कैसा मानवता का उपहास है। कैसा अधर्म हो रहा है यह!! आज हिन्दू चार वर्णों में नहीं वरन् ३००० से ऊपर उपजातियों में विभक्त हैं। क्या ऐसा समुदाय भी कभी उन्नति कर सकता है। यदि हिन्दू-रक्षकों में थोड़ी भी ईमानदारी है तो सब से पहले उन्हें जाति भेद तथा छूत-अछूत की भावनाओं को मिटाने में लग जाना चाहिये। पशुओं तक के प्रति दया भाव दिखलाने वाले व्यक्तियों को यह तो सोचना चाहिये कि मानव के प्रति उन्होंने क्या व्यवहार किया है। पूज्य बापू के शब्दों में यदि हम छूत-अछूत का कलंक हिन्दू समाज से न उठा सके तो हिन्दू धर्म स्वयं ही मिट जायगा।

यह भेद किसने फैलाये?

प्रश्न यह उठता है कि यदि धर्म इन भेदों के विरुद्ध है तो यह

---

§ देखिये R. P. Masani, 'Caste and the Structure of Society', in the 'Legacy of India,' p. 132.

फिर उत्पन्न कैसे हुये ? निश्चय ही यह काम कुछ ऐसे स्वार्थियों का है जिन्होंने धर्म का नाम पर अधर्म का प्रचार किया और धर्मान्ध हिन्दू यह समझ बैठे कि उनकी बात सत्य है।

पर यह पाप किया किसने ? प्राचीन ग्रंथों की खोज से यह पता लगता है कि यह कार्य सामाजिक नियम बनाने वाले लोगों का था। ऐसे लोगों में 'मनु' हमारे सन्मुख प्रमुख रूप से आते हैं। इन्होंने अपनी 'मनुस्मृति' * में केवल चार जातियों को माना है। पर ग्रंथ का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यथार्थ में उस समय में भी अनेक उप-जातियाँ थीं †।

पुरोहितवाद का जन्म

वेदों के अध्ययन से यह स्पष्ट लगता है कि धीरे-धीरे यज्ञों में भी विशेष प्रकार के रीति-रिवाज बढ़ते जा रहे थे। इसके साथ ही पुरोहितों (Priests) का महत्व भी बढ़ता जाता था। इसके साथ ही समाज का भी पतन होने लगा ‡।

इस पुरोहितवाद (Brahminism) के विरुद्ध शीघ्र ही आवाज़ उठने लगी। ऋगवेद के दसवें मण्डल में इस बारे में स्पष्ट संकेत है ‡। पर इसका प्रभाव न पड़ा।

---

* जैसा कि नाम से स्पष्ट है मनु ने इसे बनाया न था, वरन् केवल जो बात याद (स्मृति में) थी, उसी को लिख दिया था। शायद एक व्यक्ति द्वारा लिखी हुई यह है भी नहीं।

† देखिये पनीकर की पुस्तक, पृष्ठ २८—२६.

‡ देखिये, पुन्ताम्बेकर की पुस्तक, पृष्ठ ७२—७५ वह कहते हैं : 'It passed to an authoritarian state and was closed within bounds of an unchanging and spiritual merit. Consequently it declined'. p. 74

‡ देखिये, पुन्ताम्बेकर की पुस्तक, पृष्ठ ७४.

पश्चात् 'ब्राह्मण-युग' आया। इस समय में (लगभग १००० ई० पू० से—८०० ई० पू०) ब्राह्मणों को सर्वोपरि माना जाने लगा और वे एक पृथक जाति के रूप में आ गये। उनका महत्व इतना बढ़ा कि 'सत्पथ ब्राह्मण' में यहाँ तक लिखा है कि "यदि पुरोहित लोग बलि न चढ़ावें तो सूर्य भी उदय न हो ‡।" यही नहीं, धर्म स्वयं ऐश्वर्य पाने का साधन बन गया। धर्म करो और मजे लूटो! सत्पथ ब्राह्मण में एक स्थान पर कहा गया है कि "जो भी अश्वमेध यज्ञ करता है उसकी समस्त इच्छायें तथा कामनायें पूर्ण हो जाती है §।" इस प्रकार धन के लोभ में आकर पुरोहितों ने धर्म बेचना प्रारम्भ कर दिया। इसी को पुरोहितवाद कहा गया है। इसके अंतर्गत ब्राह्मण-पूजा भी एक धार्मिक कर्तव्य हो गया, फिर चाहे वह ब्राह्मण कितना ही दुराचारी और पाखण्डी क्यों न हो! हम तेजी से पतन की ओर जा रहे थे।

यह षड्यन्त्र चला कैसे ?

इस षड्यन्त्र के सफल होने का प्रधान कारण थे: हमारी धर्मान्धता और 'धन' के साथ 'धर्म' का गठबन्धन। भारतीय लोग भोले-भाले धर्म-भीरु तो थे ही। अतएव धर्म के ठेकेदारों ने, धर्म के नाम पर उनको खूब धोखा दिया। इस प्रकार, धर्म के नाम पर एक व्यापार शुरू हो गया!

प्रश्न उठ सकता है कि जन-साधारण अज्ञानी हो सकते हैं। पर अन्य समुदायों में तो कुछ पढ़े-लिखे व्यक्ति होंगे। उन्होंने यह बात क्यों मान ली? बात इसलिये मान ली गई कि पढ़ाने वाले तो यही पुरोहित लोग थे। बात इसलिये मान ली गई कि उस समय के कानून भी पुरोहित ही जानते तथा बतलाते थे। लिखित कानून तो

‡ उपरोक्त, पृष्ठ ७६.

§ उपरोक्त, पृष्ठ ७७.

थे ही नहीं, अतएव पुरोहितों ने जो कानून गढ़ कर बता दिये वही ठीक हो गये। हमने उनकी बात को ही सच्चा धर्म मान लिया।

फिर, इन पुरोहितों ने चाल ही ऐसी चली कि उनकी बात चल जाय। उन्होंने सत्ताधारियों को अपने साथ कर लिया। राजाओं को ये लोग स्वर्ग दिलाने तथा इस लोक में ऐश्वर्य दिलाने का विश्वास दिलाते थे। यही बात, ये धनिक सेठों से कहते थे। तो धन देने से 'धर्म' कार्य' होने लगे। यही नहीं, इस ढंग से इस लोक में भी सुख प्राप्त होने लगे। फिर क्यों न चलती उनकी बात? चाहे जितना पाप कर लो, यदि दान-दक्षिणा के लिये पैसा है तो सब क्षमा हो जायगा। यज्ञ करा लो, कथा बचवा लो, गाय पुन्य कर दो, ब्राह्मणों को भोजन करा दो या हो सके तो एक धर्मशाला, प्याऊ या मन्दिर बनवा कर किसी पुजारी के हवाले कर दो बस बेड़ा पार है। अभिप्राय यह है कि—'धनिक' तथा 'धार्मिक' शब्द पर्यायवाची हो गये।

यह गुट्ट था तो थोड़े से ही व्यक्तियों का पर इनके हाथ में धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक सत्ता थी। अतएव यह चाल चल गई। इस सम्मिलित षड्यन्त्र को साधारण लोग समझ न सके। भोले-भाले लोगों ने समझा कि कौन जाने ये तिलकधारी पुरोहित ठीक ही कहते हों। सभी बड़े आदमी तो उनकी बातें मानते हैं। तो फिर क्यों न हम भी कुछ दान-पुण्य कर पापों से छुटकारा पा लें। इस प्रकार, हमारी धर्म-भीरुता के कारण अधर्मी षड्यंत्रकारियों की चालें चल गईं।

विद्रोह की लहरें

फिर भी इस पुरोहितवाद को सब लोगों ने चुपचाप स्वीकार नहीं किया। 'उपनिषद् काल' (८००-५०० ई० पू०) इस पुरोहितवाद के विरोध का समय था। इसमें कर्मकाण्ड को बुरा बतलाया गया और अध्यात्मवाद तथा विश्व-बंधुत्व का दृष्टिकोण सामने रक्खा गया। उपनिषदों ने कर्मकाण्ड की अपेक्षा ज्ञान पर बल दिया। इस

प्रकार उन्होंने उत्पत्ति के आधार पर बड़प्पन के सिद्धान्त को गिराने का प्रयत्न किया। पर यह मार्ग थोड़े से ज्ञानियों का हो सकता था, जन-साधारण के लिये सुलभ न था। अतएव यह पुरोहितवाद को दबा न सका।

श्री महावीर स्वामी

इसके अतिरिक्त, इसी समय श्री महावीर स्वामी (५६६-५२७ ई० पू०) भी हुये, इन्होंने जैन धर्म को सुदृढ़ बनाया *। इन्होंने बाहरी ईश्वरीय शक्ति होने का विरोध किया और कहा कि साधारण मनुष्य की आत्मा ही त्याग से महान् आत्मा (परमात्मा) बन सकती है। तो ये अनीश्वरवादी थे, कर्मकाण्ड के विरोधी थे, पुरोहिततन्त्र के विरुद्ध थे और जाति-भेद को स्वीकार नहीं करते थे। इन्होंने अहिंसा तथा परिग्रह पर विशेष बल दिया।

कुछ दिनों तक पुरोहितवाद और जैन धर्म में बहुत संघर्ष चला। पर जैन धर्म के ऊपर पुरोहितवाद बाद में हावी हो गया। परिणाम यह हुआ कि जैन-धर्मावलम्बी सच्चे मार्ग से विचलित होकर जाति-भेद और छूत-अछूत को मानने लगे। और अब तो ये दोनों ही धर्म इतने घुल-मिल गये हैं कि आज यह बात समझ में भी नहीं आती कि जैन धर्म ने कभी पुरोहितवाद के विरुद्ध विद्रोह का झंडा ऊँचा किया होगा।

श्री गौतम बुद्ध

श्री० महावीर स्वामी के कुछ पीछे ही श्री गौतम बुद्ध (५८०-४८० ई० पू०) ने भी पुरोहितवाद के विरुद्ध बग़ावत की। उन्होंने देखा कि 'तृष्णा' के कारण धर्म का रूप बड़ा विकृत हो गया है। उन्होंने देखा कि धर्म को भी लोगों ने तृष्णा को पूरा करने का एक

* जैनियों की धारणा यह है कि श्री महावीर स्वामी उनके २४ वें और अन्तिम तीर्थङ्कर थे।

साधन बना रक्खा है। यही कारण है कि लोग वाह्य आडम्बर पर ध्यान देते हैं, पर मनुष्य के दुख-दर्द को कम करने की ओर उनका ध्यान नहीं जाता। उन्होंने कहा कि तृष्णा दूर किये बिना न तो शान्ति मिल सकती है और न दुख ही दूर हो सकते हैं। अतएव उन्होंने दिखावटी पूजा-पाठ, कर्म काण्ड के विरुद्ध आवाज उठाई। यज्ञ तथा बलि में होने वाली हिंसा का उन्होंने विरोध किया। पुरोहित्व और जाति-भेद तथा छूत-अछूत की भावनाओं को नष्ट करने के उन्होंने प्रयत्न किये। उन्होंने कहा कि झूठे देवताओं के चक्कर में न पड़कर, प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अपनी समझ का उपयोग कर, अपने लिये मार्ग निर्धारित करना चाहिये। इस प्रकार वह बुद्धि को प्रधानता देते थे। अतएव इस धर्म के अनुयायी 'बौद्ध' कहलाये।

एक समय यह बौद्ध धर्म खूब फैला, यहाँ तक कि अनेक राजाओं ने भी इसे स्वीकार कर लिया। यही नहीं, इसकी विजय पताका एशिया के बड़े भाग पर लहराने लगी। ऐसा लगता था कि भारतवर्ष जग कर पुरोहितवाद को नष्ट कर देगा और उन्नति की ओर अग्रसर होगा। पर यह हमारा दुर्भाग्य था कि ऐसा न हो सका। और यद्यपि बौद्ध धर्म हिंद के बाहर आज भी तीन ओर फैला हुआ है, भारतवर्ष में संगठित षड्यंत्र के मुकाबले में वह न ठहर सका।

इतिहासकारों की भूल

कुछ इतिहासकारों ने श्री महावीर स्वामी तथा श्री गौतम बुद्ध के इन प्रयत्नों को "पुरोहितवाद के विरुद्ध क्षत्रियों का विद्रोह" कहा है। यह धारणा एकदम निर्मूल है। ये दोनों ही महापुरुष जन्म से राज-कुमार तो अवश्य थे, किन्तु इसके विद्रोह का कारण तो उनका मानवी दृष्टि कोण था। यही नहीं, इन दोनों के ही प्रयत्नों से राजघरानों को कोई लाभ भी नहीं हुआ। राजा लोग तो पुरोहितवाद को अपना कर और भी मजे में रह सकते थे। विशेष तौर पर, बौद्ध धर्म तो जनतंत्रीय था और स्वेच्छाचारी शासन के विरुद्ध था। यदि पुरोहितवाद नष्ट हो

जाता तो उसका लाभ सबसे अधिक जन-साधारण को होता। फिर न जाने क्यों इतिहासकारों ने यह भद्दी भूल की है ?

स्मृति-काल

पुरोहितवाद के विरोध में विद्रोह की लहरें उठीं, पर वे स्वार्थियों की गुटबन्दी रूपी चट्टान से टकरा कर छितरा गईं। इसका कारण यह था कि यह विद्रोह ऊपरी श्रेणियों तक सीमित रहा, जनप्रिय न हो सका। दूसरा कारण यह था कि शूद्रों को नीचा दर्जा दे देने से सभी ऊँची जातियों को लाभ हो रहा था। अतएव स्वार्थ को ध्यान में रखकर लोगों ने मानवता को ठुकरा दिया।

इसका परिणाम यह हुआ कि स्वार्थियों ने अपनी लौह-श्रंखला को और भी मज़बूत कर लिया। ऐसा किया गया, स्मृतियों को रच कर। जैसा कि नाम से स्पष्ट है इसके रचियताओं ने कहा कि हमने कोई नई चीज़ नई बनाई है। हम तो केवल बाप-दादों की बातों को लिखित रूप दे रहे हैं। इन स्मृतियों के द्वारा, 'वर्ण' के स्थान पर जन्म के आधार पर होने वाली जातियों को मान लिया गया और प्रत्येक जाति के कर्तव्य निश्चित कर दिये गये। यही नहीं, ब्राह्मण पूजा तथा जाति-भेद को सभ्य जीवन के लिये आवश्यक कहा गया। जातियों को दैवी घोषित कर दिया गया *। प्रत्येक जाति के लिये कानून तथा दण्ड पृथक्-पृथक् निश्चित किये गये। ब्राह्मण यदि अपराध करे तो दण्ड बहुत कम होता था, पर वही अपराध यदि शूद्र करे तो दण्ड भयानक स्थिर किया गया। मनुस्मृति (३०० ई० पू०) ने इससे भी भयंकर बात यह की कि उन्होंने इन बेइमानी से भरे नियमों के पालन को स्वर्ग पाने का मार्ग घोषित कर दिया। अपनी धर्मान्धता के हम परिणाम भुगत रहे थे †।

---

* देखिये पुन्ताम्बेकर की पुस्तक, पृष्ठ ७६—८१

† उपरोक्त, पृष्ठ, ८१ इस विषय जानकारी अधिकतर इसी पुस्तक के चौथे अध्याय से ली गई है।

श्रीमद्‌भगवद् गीता

इस भयानकता तथा क्रूरता को भगवद् गीता के रचियता ने कुछ कम करने का प्रयत्न किया। जाति के स्थान पर उसने फिर वर्ण बनाने पर ध्यान दिया। ऊँच-नीच की भावना को बुरा बतलाया गया। धार्मिक क्षेत्र में सभी वर्णों तथा स्त्रियों को समान कहा गया। इस प्रकार गीता द्वारा यह प्रयत्न किया कि कम से कम धार्मिक क्षेत्र में सब की समानता को स्वीकार कर लिया जाय।

पौराणिक काल

इस काल में महाकाव्य रचे गये और पुराण रचे गये। इस समय श्री शंकराचार्य एक बड़े टीकाकार हुले। इस समय के ग्रंथों का अवलोकन करने से पता चलता है कि सैकड़ों उपजातियाँ पैदा हो गईं थीं, हजारों देवी-देवता माने जाते थे और मूर्ति-पूजा चल पड़ी थी। छूत-अछूत की भावना बहुत प्रबल हो गई थी और जाति-भेद काफी कड़े हो गये थे। 'श्रुति-स्मृति-पुराणों' का धर्म तेजी से बढ़ता जा रहा था।

उपरोक्त अध्ययन से पता चलता है कि ऊँचे आदर्शों के रहते हुये भी हम सहिष्णुता, मानवता तथा विश्व-बंधुत्व के सिद्धान्तों से बहुत दूर चले जा रहे थे। समारे समाज में घुन लग गया। समाज एक प्रगतिशील नदी न रह कर एक दलदल बनता जा रहा था। समाज में सड़ायँद पैदा हो गई थी। और इसी दलदल की अपवित्र गंध को स्वार्थी लोग अमृत की सुवास बतला कर, हमारी धर्मान्धता से लाभ उठा रहे थे। पतन की यह पराकाष्ठ थी!

इसका पश्चात् तो केवल राजाओं की कहानियाँ रह जाती हैं। धर्म तथा समाज को सुधारने के प्रयत्न जारी रहे, पर उन्हें सफलता न मिली। अधिकतर हिन्दू राजे अपने भोग-विलास में मस्त रहते थे और सुन्दरी, धन, सीमा-विस्तार या मान के लिये आपस में लड़ते रहते थे। हमारा समाज इतना खोखला हो गया था कि हम अपने पाँवों पर विना सहारे के खड़े रहने लायक न रह गये थे। साधारण सी तेज हवा भी

हमारे समाज तथा देश में उथल-पुथल मचा देने के लिये पर्याप्त होती।

मुसलमानों का आगमन

यों तो अरबों से हिन्दुओं का सम्पर्क उस समय से भी पहले का है जब कि सब अरब मुसलमान नहीं हुये थे। पर उन्होंने हमारे ऊपर कोई प्रभाव न डाला। इस सम्पर्क में निकटता ७१२ ई० से आई जब मुसलमानों ने सिन्ध को अपने आधीन कर लिया। सुल्तान महमूद के लुटेरेपन ने हिन्दुओं को इस्लाम के विरुद्ध कर दिया। फिर भी कोई संगठित मोर्चा न बन सका। उसके लगभग पौने दोसौ वर्ष बाद मुहम्मद गोरी की विजय ने सन् ११९३ ई० में भारत में एक मुस्लिम राज्य स्थापित कर दिया।

एक नई समस्या

भारतवर्ष के सामने अब एक नई समस्या थी। मुसलमान लोग सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक बातों में उस समय के हिन्दू जीवन से भिन्न थे। धार्मिक क्षेत्र में वे एकेश्वरबाद के अनुयायी थे और मूर्ति-पूजा के कट्टर विरोधी थे। सामाजिक क्षेत्र में वह अपने सहधर्मियों के मध्य किसी प्रकार का भेदभाव तथा ऊँच-नीच की भावनायें न रखते थे। विधर्मियों के साथ उनका व्यवहार उतना ही बुरा था जितना कि पहले हमारा रह चुका था। तो फिर होता क्या?

ऐसा दशा में या तो दोनों साथ-साथ मिलकर रह सकते थे या दोनों एक दूसरे को मिटा डालने की सोच सकते थे। दुर्भाग्यवश हमने अन्तिम मार्ग अपनाया। कहा जाता है कि पण्डितों की एक बड़ी सभा इस प्रश्न पर विचार करने बुलाई गई थी कि इन लोगों को समाज में क्या स्थान दिया जाय। पर कई कठिनाईयाँ थी। मुसलमानों के पास राज्यसत्ता तो थी ही। वह अपना धर्म श्रेष्ठ मानते थे। उधर पुरोहितवाद इस बात को कैसे स्वीकार कर लेता। अतएव

भारतीय पुरोहितवाद इस्लाम को न तो दबा सका और न उसे आत्मसात ही कर सका।

परिणाम यह हुआ कि पुरोहितवाद के चक्कर में फँस कर हमने मुसलमानों को 'यवन', 'मलेच्छ' और न जाने क्या-क्या कहा। बदले में उन्होंने हमारे मन्दिरों को तोड़ा और तलवार की ज़ोर से हजारों व्यक्तियों को मुसलमान बना डाला। पर हमें यह न भूल जाना चाहिये कि हजारों व्यक्ति स्वयं भी हमारी क्रूरता से तङ्ग आकर मुसलमान बन गये थे। इस संघर्ष का परिमाण यह हुआ कि बहुत समय तक मुसलमानों को षड्यन्त्रों का डर बना रहा और वे इस्लामी देशों की ओर सहायता के लिये आशा लगाये रहे।

मुसलमान कई बार में आये

पर आर्यों की तरह मुसलमान भी कई बार में आये। नये "मुगलों" के आने से मुसलमानों की एकता की दीवार टूट गई। मुगलों को यहाँ आकर मुसलमान तथा हिन्दुओं दोनों से ही लड़ना पड़ा। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि अकबर महान् के बाद भारत-वर्ष में छोटा या बड़ा ऐसा शायद ही कोई संघर्ष हुआ हो जिसमें सब मुसलमान एक ओर रहे हों और सब हिन्दू दूसरी ओर।

मुग़लों की नीति

मुग़लों के राज्य को दृढ़ बनाने वाले हुमायूँ ने यह समझ लिया कि उसे यहाँ मुसलमान तथा हिन्दू दोनों की कट्टरता तथा स्वार्थ-परायणता से लड़ना होगा। अतएव उसने मरने के पूर्व अकबर को सलाह दी कि वह हिन्दुओं के साथ अच्छा व्यवहार करे। अकबर ने इसी नीति को बरतने का यथा सम्भव प्रयत्न किया। उसका प्रयत्न यह था कि इन दो धर्मों को एक दूसरे के समीप लाया जाय।

संत सम्प्रदाय

उधर धर्म के क्षेत्र में संत सम्प्रदाय और सूफ़ी लोग अपने ही ढंग पर ऐक्य कायम करने का प्रयत्न कर रहे थे। इन लोगों में कबीर, दादू, नानक इत्यादि के नाम प्रमुख रूप से सामने आते हैं। 'मुसलमानों में भी सूफ़ी लोग इसी प्रकार के प्रयत्न कर रहे थे। इसमें सबसे बड़ी बाधा यदि कोई थी तो हमारी छूत-अछूत की भावना तथा जाति-प्रथा। ये ऐसी दीवारें थीं जिनसे टकराकर संतों के समस्त प्रयत्न चकनाचूर हो गये'*। हिन्दुओं तथा मुसलमानों के कठमुल्लापन ने इस नये वृक्ष को पनपने ही न दिया।

औरङ्गजेब की अदूरदर्शिता

रहे-सहे काम पर औरंगजेब ने अपनी कट्टरता तथा असहिष्णुता से पानी फेर दिया। उसमें न तो अकबर महान् जैसी समझ थी और न राजनीतिक दूरदर्शिता। अतएव उसने अकबर की परम्परा को बदल दिया।

शिवाजी महाराज

इसका परिणाम बुरा हुआ। जगह-जगह विद्रोह होने लगे। शिवाजी ने महाराष्ट्र में विद्रोह का झण्डा उठाया। शिवाजी के बारे में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने बहुत ही असत्य तथा गन्दा प्रचार किया है। पर इतिहास के विद्यार्थियों को पता है कि जब उनका राज्याभिषेक होने वाला था तो पुरोहितों ने उनसे इस बात का प्रमाण देने को कहा था कि वह क्षत्रिय हैं। यही नहीं, उन्हें यह वचन भी देना पड़ा था कि वह ब्राह्मणों को ही प्रधान-मंत्रित्व देंगे!

ऐसा क्यों हुआ? इसका कारण यह था कि पुरोहित लोग उनकी नीति से संतुष्ट न थे। उनकी फौज में सभी जातियों के साथ

---

* देखिये मेरी पुस्तक 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ क्या है?' (आगरा, फरवरी १६४८), पत्र १३

एक-सा व्यवहार किया जाता था। यही नहीं, उनके यहाँ कई ऊँचे फौजी अधिकारी मुसलमान थे। फिर उनकी स्पष्ट मनाई थी कि स्त्रियों का कहीं अपमान न हो, कुरान और मस्जिद नष्ट न किये जायँ, बूढ़े तथा बच्चों को हरगिज़ न मारा जाय और कत्ले आम कभी न हों। यह ठीक है कि उन्होंने लोगों को धर्म के नाम पर जुटाया, पर यदि वास्तव में वे कट्टर होते तो मुसलमान फौजी अफसरों पर विश्वास न करते*।

वलीउल्लाई सम्प्रदाय

औरंगजेब की नीति और उसके कठमुल्लापन का विरोध करने वाले कुछ मुसलमान लोग भी थे। ये लोग औरंगजेब की नीति को अदूरदर्शितापूर्ण ही नहीं, वरन् धर्म-विरुद्ध समझते थे। इनके नेता शाह वलीउल्लाह † ने एक ऐसी राष्ट्रीय जनतंत्रवादी मुस्लिम परम्परा चलाई जो 'देवबन्द स्कूल' का नाम से विख्यात है। अब इस परम्परा को बढ़ाने का श्रेय 'जमीयत-उल-उलमा' को है। इसी परम्परा के चौथे इमाम—हाजी इमदादुल्ला ने सन् ५७ के विद्रोह में प्रमुख भाग लिया था।

ईसाइयों से सम्पर्क

मुसलमानों के पश्चात् भारतवर्ष में मुगलों के समय अँगरेज तथा अन्य ईसाई लोग आये। पहले व्यापारी आये और फिर प्रचारक। इन दोनों ने मिलकर यह समझ लिया कि भारतवर्ष में इतनी फूट है कि कोई भी शक्ति यहाँ मज़े से राज्य कर सकती है। अतएव इन्होंने

---

* शिवाजी के नये भक्त शिवाजी को बदनाम ही नहीं करते वरन् उनके द्वारा वर्जित कार्यों को करना अच्छा समझते हैं।

† देखिये मेरी पुस्तक **'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ क्या है ?'** पृष्ठ १३-१४ और श्रीयुत रतनलाल बन्सल लिखित **'रेशमी पत्रों का षड्यंत्र'**। बन्सल जी की पुस्तक में इस सम्प्रदाय का औरंगजेब के समय से १९१८ ई० तक का पूर्ण वर्णन है।

धीरे-धीरे अपनी जड़ें मजबूत करना प्रारम्भ कर दिया। प्लासी के युद्ध (१७५७ ई०) के बाद अँगरेज भारतवर्ष में शासक बन गये। फिर तो छल-बल से इस राज्य का विस्तार तेजी से होने लगा। १८५७ ई० के विद्रोह और उसके परिणाम के विषय में हम ऊपर संकेत कर ही आये हैं।

तो ईसाइयों के आने से हिन्दुओं के सन्मुख फिर एक नई समस्या खड़ी हो गई। पादरी लोग हिन्दू धर्म की कड़ी आलोचना कर रहे थे। उनके प्रभाव में आकर अनेक व्यक्ति धर्म-परिवर्तन कर रहे थे। इस प्रवाह को रोकने और हिन्दू-धर्म को सुधारने के लिये ब्राह्म-समाज तथा आर्य-समाज सामने आये। इनमें से प्रथम का झुकाव ईसाई धर्म की ओर था, और द्वितीय का प्राचीनता की ओर। पर दोनों ही जाति-प्रथा और पुरोहितवाद के विरोधी थे। इन्होंने जनता में एक हलचल तो मचा दी, पर ये रूढ़िवाद के गढ़ को मिट्टी में न मिला सके।

अँगरेज़ों की 'फूट-नीति'

अँगरेजों ने आते ही यह देख लिया था कि हमारे देश में फूट है और उससे लाभ उठाने के काफ़ी अवसर भी हैं। अतएव लार्ड ऐलनबोरो ने (वाइसराय, सन् १८४२-४४) में ही कहा कि रोमन साम्राज्यवादियों के समान हमें भी भारत में 'फूट डालो और राज्य करो' की नीति को अपना लेना चाहिये। हमारे देश का दुर्भाग्य यह है कि हम बराबर अँगरेजों की इस नीति के शिकार होते रहे*। सन् १९१६ में लखनऊ पैक्ट और बाद में खिलाफ़त आन्दोलन के रूप में एकता के जो चिंह प्रगट हुये, अँगरेजों ने जान-बूझ कर दंगे करा के उन्हें मिटा देने का प्रयत्न किया। इस समय से अँगरेजों ने राजाओं के गुट्ट का सहारा भी लिया। इसीलिये जब-जब अँगरेजों से लड़ने का मौका आता था तो यह लोग चेहरा भी न

---

* देखिये मेरी पुस्तक 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ क्या है ?', पृष्ठ १२-३६ इसमें इस फूट नीति पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

दिखलाते थे। पर सुधारों का प्रश्न उठते ही, ये दंगे करके अपने-अपने सम्प्रदायों को फ़ायदा पहुँचाने का प्रयत्न करते थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इन सम्प्रदायवादियों तथा अँगरेजों के स्वार्थों में कोई विरोध न था। दोनों ही जन-विरोधी थे और अपने अधिकारों तथा सत्ता को सुरक्षित रखना चाहते थे।

धर्म तथा सम्प्रदाय के नाम पर लोगों को भड़काने की यह कहानी इतनी दुखद है कि कुछ कहते नहीं बनता। उनके हाथ में खिलौने बनने वाले लोगों में सभी लोगों स्वार्थी थे—राजा लोग जिन्हें अपनी अपनी स्वेच्छाचारिता से मतलब था, जमींदार तथा जागीरदार जो जो बराबर जनता का गला काटते रहे थे, पुरोहित और कठमुल्ले जिन्होंने कभी जनता का साथ नहीं दिया और सदैव राजसत्ताधारियों की चापलूसी की। पर आश्चर्य तो यह है कि कभी-कभी हमारे राजनीतिक राष्ट्रीय नेता भी अनजाने में इनके फन्दे में पड़ जाते थे।

समाजवादी धारा

महात्मा गाँधी पहले तो मानवता के नाम पर और न्याय के नाम पर अत्याचार का अंत करना चाहते थे। पर दरिद्रनारायण की सेवा करते-करते उन्हें यह पता लग गया कि धनिक वर्ग जनता का कितना शोषण करता है। पं० नेहरू के सम्पर्क में आकर उन्होंने दो नई बातें ग्रहण की। इनमें एक बात थी अन्तर्राष्ट्रीय कोण और दूसरी थी समाजवादी धारा। अतएव उन्होंने कहा कि धनिक वर्ग अपने को ट्रस्टी समझे और केवल उतना ही धन स्वयं ले जितना जनता प्रसन्नता से दे। गाँधीजी ने तो कह दिया, पर इस बात को मानता कौन? हाँ, हवा का रुख देख कर राजा, जागीरदार, पूंजीपति, जमींदार सभी सतर्क हो गये। इन्होंने धर्म के नाम पर बहकाने वाले पुरोहितों तथा मौलवियों का साथ लिया, जिससे देश के स्वाधीन हो जाने पर सत्ता जनता के हाथ में न चली जाय।

'बापू का बलिदान' पुस्तक से

गांधीजी के इस आकस्मिक निधन ने मेरे मन को पूर्णतया झकझोर डाला है। मुझे ऐसा लगता है कि गाँधीजी का वह उद्देश्य ही जिसके लिये उन्होंने अपनी आहुति दे दी, मेरे जीवन का लक्ष्य हो सकता है। अतएव मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि यथा-शक्ति वचन और कर्म से मैं उनके निम्नलिखित कार्यों को पूरा कराने में प्रयत्नशील रहूँगा :—

(१) साम्प्रदायिकता का समूल आच्छेदन।

(२) छूआछूत के कलंक से समाज को मुक्ति-प्रदान।

(३) सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में जनतंत्र लाने का प्रयत्न (इसके लिये गाँधीजी ने 'हरिजन' में अन्तिम लेख लिया था)।

इस प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करते समय मैं यह जान रहा हूँ कि यह कार्य कठिन है और इसके लिये त्याग करना होगा।

नाम—————————— आयु——————

पेशा—————————— पूरा पता——————————

बापू ने कुछ समझा और सम्प्रदायवादियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। पर विष तो चढ़ रहा था। उनकी न सुनी गई। सम्प्रदाय-वाद का ताण्डव-नृत्य होने लगा और पटाक्षेप हुआ देश के सबसे महान् व्यक्ति को मार कर!

पर सम्प्रदायवादी इसे पटाक्षेप नहीं मानते। उनके स्वप्न अभी भी सुनहले हैं। पर अब आप क्या उनकी मक्कारी चलने देंगे? आप प्रतिज्ञा कीजिये कि ऐसा न हो पायगा, और साथ में लगे प्रतिज्ञा-पत्र को भर कर पण्डित नेहरू को भेजिये जिससे वह यह जान सकें कि जनता उनके साथ है।

: ४ :

हमें चुनौती दी गई है

बापू के बलिदान ने हमको बुरी तरह झकझोर डाला है। संसार के कोने-कोने से शोक के समाचार आ रहे हैं। आज हिंद में शोक के बादल मड़रा रहे हैं। हिंदवासी उन लोगों से बेहद नाराज़ हैं जिन्होंने यह कायरतापूर्ण कार्य किया है।

हिंदवासी चाहते हैं कि गाँधीजी के हत्यारों की कलई खोली जाय और उन्हें समुचित दण्ड दिया जाय। उनकी यह इच्छा स्वाभाविक ही नहीं वरन् पूर्णतया उचित है। हिन्दुस्तान के इतिहास में एक बेमिसाल पाप किया गया है। और पाप भी किसलिये? धर्म की आड़ में स्वार्थियों के हित-साधन के लिये। अपराधियों को यह बता दिया जाना चाहिये कि इस प्रकार के कार्यों से उनको कोई लाभ न होगा। इन बातों से हम कतई डिगने वाले नहीं हैं। वरन् इसका प्रभाव तो हमारे ऊपर उलटा यह पड़ेगा कि हम अपने राष्ट्रपिता, बापू के दिखलाये हुये पद-चिन्हों पर और भी तेज़ी से चल देंगे। यदि हम इस चुनौती को पाकर भी चुप हो जायँ, तो हमसे अधिक मूर्ख तथा अयोग्य व्यक्ति कौन होगें। परन्तु इस प्रश्न का हल हम कानून को स्वयं हाथों में लेकर नहीं कर सकते। यह कार्य तो सरकार के द्वारा ही किया जा सकता है। अतएव हमको चाहिये कि हम अपने कार्यों तथा विचारों द्वारा सरकार को बतला दें कि हम क्या चाहते हैं।

एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ कि यह चुनौती इस प्रकार से आई है कि हम किसी सन्देह में न रहे। यह बहुत बुरा होता यदि यह कार्य किसी मुसलमान अथवा शरणार्थी ने किया होता। मुसलमान के करने से गाँधीजी के जन्म भर के काम पर पानी फिर जाता। यदि शरणार्थी ऐसा करता तो उसका प्रभाव शरणार्थियों की समस्या पर बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण पड़ता। अभागे गोडसे ने झूठ बोल कर पहले अपने को मुसलमान और बाद में शरणार्थी बतलाया भी था। पर समय रहते वह पहिचान लिया गया। अतएव, यह स्पष्ट है कि यह चुनौती हिन्दू प्रतिगामियों तथा पुरातनवादियों की ओर से आई है।

साथ ही यह दुर्घटना यह भी बतलाती है कि इन लोगों के षडयंत्र किस गहराई तक पहुँच गये है। यदि इन लोगों को आगे अवसर दिया गया, तो न जाने यह क्या मक्कारी करेंगे। घटनायें स्पष्ट बतला रहीं हैं कि बैठे रहने अथवा सुस्ती से काम करने का समय गया।

हो सकता है कि देखने में यह काम कुछ कठिन लगे। पर ढिलमिल नीति से तो काम नहीं चलने का। अच्छा होगा यदि हम बहादुरी से समय रहते काम लें। इस समय जनता में अभूतपूर्व जाग्रति हो गई है। अतएव हमको यह दिखा देना चाहिये कि वास्तव में गाँधीजी को मारी गई प्रत्येक गोली हिन्दू प्रतिक्रियावाद तथा पुरातनवाद की कब्र में एक कील साबित होगी। हमें शीघ्रता से काम करना चाहिये, नहीं तो दुश्मन को छिपकर संगठित हो जाने का अवसर मिल जायगा। अतएव हमको तेजी से सोचकर काम करना चाहिये। ऐसे समय हमें उस विचार-धारा को ऐसी पछाड़ देनी चाहिये कि वह फिर उठ ही न सके। इसके बिना और बकवाद करना व्यर्थ है। इस समय क्षमा तथा अहिंसा की बातें करने वालों को कह दीजिये कि आप बापू का नाम लेकर बापू की स्मृति को धोखा देना चाहते हैं। यदि अहिंसा का तात्पर्य यह है कि बदमाशों को न रोका जाय, तो तोड़ न दीजिये सारी फौजें और पुलिस ? यदि ऐसा नहीं कर सकते, तो राष्ट्र

के साथ आड़े समय गद्दारी न कीजिये। यदि आप में इतनी शक्ति है कि आप जन-प्रदर्शनों पर रोक लगा सकते हैं, क्रुद्ध जनता पर गोली चला सकते हैं, तो षड्यंत्रकारियों की बात आते ही आपको क्षमा की याद क्यों आ जा जाती है? ज़रा, दिल पर हाथ रख कर टटोलिये तो!

हमें भय होता है कि हमारे नेता कहीं निष्क्रिय न बन जायँ। हमें डर लगता है कि वे इन प्रतिगामी शक्तियों को कहीं छोटा-मोटा न समझ बैठें। एक खतरा यह भी है कि स्वार्थी लोग कहीं झूठा प्रचार कर ख़ुद साफ़ न बच जायँ। एक डर यह भी है कि कहीं सरकार यह कह कर बात न टाल जाय कि यह परिस्थिति संकटपूर्ण है। यदि उन्होंने किसी प्रकार की सुस्ती या निर्बलता दिखलाई, तो यह बुरी बात होगी। यदि उन्होंने हिचकिचाहट दिखलाई तो यह दुर्भाग्य की बात होगी। इसका परिणाम यह होगा कि प्रतिगामियों का काम बन जायगा। इसका अर्थ यह होगा कि समय आने पर हमारे नेता साहस का परिचय न दे सके। उन्होंने या तो प्रतिगामी शक्तियों को कमज़ोर समझ कर छोड़ दिया या छिपे-छिपे उनका साथ दिया। इतिहास का, असफल होने वाले नेताओं के बारे में, निर्णय देने का अपना विशेष ढंग है। वह कहेगा कि बापू के अनुयायियों ने उनके साथ विश्वास-घात किया।

यह शब्द बहुत कठोर हैं। पर ऐसे समय मीठी बात भी तो कहीं नहीं जा सकती। यदि ये कठोर शब्द हमारे नेताओं का ध्यान यथार्थता की ओर आकर्षित कर सके, तो वह अपना काम कर चुकेंगे। सत्य सदा मधुर नहीं होता, बापू कहा करते थे। फिर भी उन्होंने सत्य तथा परमात्मा को एक ही बतलाया था। यही नहीं, उन्होंने कहा था कि परमात्मा के दर्शन 'दरिद्रनारायण' की सेवा करने से ही मिल सकते हैं। वह स्वयं जनता के एक बड़े हितू तथा सेवक थे। वह स्वयं भारतवर्ष में समाजवाद लाना चाहते थे। उन्होंने अपना अन्तिम लेख इसी विषय में लिखा भी था। वह यह समझते थे कि बहुत से परि-

बर्तनों की आवश्यकता पड़ेगी ! जब भी उन्हें ऐसा लगा, वह उन्हें बतलाने में नहीं हिचकिचाये। अंतिम लेख में उन्होंने कहा कि राजनीतिक स्वाधीनता तो हमें मिल गई, पर अब हमें सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में भी जन-तंत्र लाने का प्रयत्न करना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा कि यह कार्य सरल नहीं है। निहित स्वार्थ तो हैं हीं, साथ में जनता में भी अभी इतना जागरण नहीं है। पर उन्हें अपने कार्य में पूर्ण विश्वास था। हमारा यह दुर्भाग्य है कि वह अब नहीं रहे। एक सम्प्रदाय-वादी गुण्डे ने उन्हें मार दिया है। उनके चले जाने पर, अब हम क्या हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहेंगे ? क्या इस चुनौती को हम चुपचाप स्वीकार कर लेंगे और गुण्डागीरी के आगे सिर झुका देंगे ?

इसके अर्थ होंगे कि गुण्डों का एक झुण्ड जीत गया और हम हार गये। इसका अर्थ यह होगा कि गाँधीजी का नेतृत्व ऊपरी था और उनके जाते ही हमने उनकी बातें छोड़ दीं। इसका अर्थ यह होगा कि हिंदवासी महात्माजी के अयोग्य निकले। हमारे नेताओं के सन्मुख यह एक ऐसा अवसर है जब वे यह प्रामाणित कर सकते हैं कि वे किसी को भी गाँधीजी या हिंदवासियों के बारे में ऐसी बातें न कहने देंगे। ऐसा वह साहसपूर्वक कार्य करके कर सकते हैं। ऐसा वह स्पष्टता से और तेजी से सोचकर कर सकते हैं। इसके लिये यह आवश्यक है कि हम अपने-अपने मन से चोर निकाल दें। तभी और केवल तभी हम समय रहते काम कर सकते हैं। समय पर काम न करने से अच्छे काम भी बिगड़ जाते हैं। हमारी आशा है कि नेता लोग इस समय अयोग्य साबित न होंगे। हम इस समय एक चौराहे पर खड़े हैं : हमें या तो उन्नति करने के लिये तेजी से चलना होगा अथवा प्रतिगामी शक्तियाँ हमारे चेतने के पहिले ही हमें धर दबायेंगी।

: ५ :

इस हत्या का नैतिक उत्तरदायित्व

बापू की हत्या बहुतों के लिए एक अप्रत्याशित घटना है। ऐसा इसलिए है कि हम अपनी स्वप्नों की दुनियाँ में बैठे यह सोच रहे थे कि किसी को भी गाँधीजी के ऊपर हाथ उठाने का साहस न होगा। कलकत्ता में की गई बेइज्ज़ती ने हमारी आँखें न खोलीं! देहली में दशहरे पर बाँटे गये पर्चों को हमने एक तमाशा समझ लिया! गाँधीजी की सभा में फेंके गये बम्ब का भी हम पर प्रभाव न पड़ा। यह आश्चर्य की बात है कि हम इन सब बातों के होते हुये भी यह न समझ सके कि सारे देश की हवा ही ज़हरीली हो गई है। देश के एक महान् व्यक्ति का खून हुये बिना हमारी आँखें खुलनी ही न थीं!

पर, ऐसा लगता है कि लोगों की आँखें अब भी नहीं खुलीं। अब भी हममें से कुछ इन षड्यन्त्रकारियों की योजना को सच मानने से इन्कार कर रहे हैं। वह यह कहना चाहते हैं कि यह तो एक पागल का काम है। अगर हम इसी प्रकार एक काल्पनिक संसार में विचरते रहे, तो इतिहास कहेगा कि हममें तथ्यों का सामना करने की न तो क्षमता थी और न मुकाबला करने का साहस।

तो ऐसी क्या बातें हैं जो इस घटना से सम्बन्ध रखती हैं। बहुत दूर नहीं, केवल बिहार की घटना को ही याद कीजिये। इसी ने गाँधीजी तथा पंडित नेहरू को बदनाम कर दिया। प्रतिगामियों ने इस अवसर से

भरपूर लाभ उठाया। उसके बाद घटना तेज़ी से घटने लगीं। सारे देश में हालत बिगड़ने लगी। महात्माजी उस समय कलकत्ते में शान्ति रखने का प्रयत्न कर रहे थे। पर, वहाँ गुण्डों की इतनी हिम्मत पड़ गई कि एक दिन गाँधीजी पर हमला बोल दिया गया और उन्हें जूतों की माला उपहार-स्वरूप गले में पहना दी गई। हमको यह न भूल जाना चाहिये कि इतना होने पर ही हमारी कर्तव्य बुद्धि जागी! धन्य हैं हम और हमारी बुद्धि !!

पर, अभी तो बहुत कुछ होना था। प्रतिक्रियावाद और सम्प्रदायवाद फैलने लगा। पञ्जाब की घटनाओं ने हमारा मस्तिष्क ख़राब कर दिया। यहाँ तक कि काँग्रेस के तपे हुये नेता भी फ़ौज़ियों जैसी बातें कहने लगे। कुछ तो अपने भाषणों में प्रतिक्रियावादियों तक के कान काटने लगे। शायद वे इन प्रतिगामियों के सरताज बन जाना चाहते थे!

झगड़े देहली में भी फैलने लगे। यातायात तथा सन्देश के साधन काट दिये गये। ख़बर उड़ी कि भरतपुर, अलवर, ग्वालियर, धौलपुर आदि मिलकर संयुक्त प्रान्त और देहली पर धावा बोलने वाले हैं। बात यहाँ तक बढ़ी कि संयुक्त प्रान्त के प्रधान मन्त्री, श्री गोविन्द बल्लभ पन्त तक को भरतपुर की गुण्डागीरी के विरुद्ध आवाज़ उठानी पड़ी। इसी बीच में गाँधीजी ने देहली चले आने का निश्चय कर लिया था। देहली, उन्होंने देखा, भारत का केन्द्र-स्थल और राजधानी है। यदि केन्द्र में भी गड़बड़ी फैल गई, तो फिर स्थिति का समझना कठिन हो जायगा। वह देहली आये और डट कर सम्प्रदायवाद के विरुद्ध प्रचार करने लगे। उनकी दृढ़ता का प्रभाव धीरे-धीरे लोगों पर पड़ने लगा। सम्प्रदायवादियों को यह बुरा लगता था, पर उनकी यह हिम्मत न पढ़ती थी कि बापू और बापू-भक्त जनता को नाराज़ करें।

इसी बीच में काश्मीर का प्रश्न सामने आया। आशा यह की जाती थी कि हिन्दवासी अब तो चेत जायँगे। अब तो वह समझ लेंगे

कि मुसलमानों के साथ उचित व्यवहार किया जाना चाहिये। पर लोगों की मति कुछ ऐसी भ्रष्ट हो गई थी कि ऐसा न हुआ। शेख अब्दुल्ला, शेरे काश्मीर, जब देहली आये तो वहाँ के ज़हरीले वातावरण को देखकर स्तब्ध रह गये। जिस हिन्द पर वह आशा लगाये बैठे थे, वहीं सम्प्रदायवाद की लहरें तेज़ी से फैल रही थीं। शेख अब्दुल्ला ने स्पष्ट कह दिया कि हिन्द में यदि यही हालत रही, तो काश्मीर पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। पर, सब ने सुनी-अनसुनी कर दी। एक बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि हमारे कुछ काँग्रेसी नेता एक ओर तो भारतवर्ष के मुसलमानों पर विश्वास न रहने की बातें कह रहे थे और दूसरी ओर काश्मीर के मुसलमानों के रक्षक होने का दम भरते थे!

पर यह पर्दा भी अधिक दिन तक न रह सका। कुछ लोग तो साफ़-साफ़ कहने लगे कि यदि तलवार के ज़ोर से हमने काश्मीर पर अधिकार किया, तो फिर जन-मत-संग्रह कैसा? पण्डित नेहरू को अपने वचन तोड़ने को फुसलाया जा रहा था! ऐसे ही समय बापू ने साफ़ कहा कि यदि जनता काश्मीर के राजा को नहीं चाहती, तो तो राजा को गद्दी छोड़ देनी होगी। उन्होंने कहा कि यह बेईमानी नहीं चलने की। या तो जनता सब कुछ है या कुछ भी नहीं। पर किसी ने ध्यान न दिया।

तभी उन्होंने अनसन रखने की घोषणा कर दी, प्रतिगामियों ने कहा कि चलो अच्छा हुआ। उन्होंने आवाज़ लगाई कि 'गाँधी को मर जाने दो'। उन्हें गाँधीजी की इच्छा पूरी होने की कोई आशा न थी। पर अनहोनी भी होती दिखलाई देने लगी। वह सफल हुए, तो उन पर बम्ब फेंका गया। एक बार बच जाने पर दुबारा वार किया गया और इस बार, देश का दुर्भाग्य कि वह बच न सके। पर उनके मरने पर क्या प्रतिगामी सफल हो जायँगे? नहीं, यह नहीं हो सकता। हम ऐसा हरगिज़ न होने देंगे।

पर हम क्या कर सकते हैं? हम असहाय और लाचार हैं!

स्थिति ऐसी हो गई है कि दुश्मनों को पहिचानना कठिन हो गया है। इसी कठिनाई ने हमारे हाथ-पाँव फुला दिये हैं। अतएव हमें देखना चाहिये कि देश के दुश्मन ये कौन हैं ?

सबसे पहले तो हमें काँग्रेस के संगठन को या तो बापू की इच्छानुसार, समाप्त कर देना होगा अथवा कम से कम, छिपे रुस्तमों को तो उससे निकालना ही होगा। इन्हीं दिनों, काँग्रेस में अवसर-वादियों, सम्प्रदायवादियों और हिंसावादियों का बोलबोला-सा हो गया है। परिणाम यह है कि काँग्रेस शक्तिहीन हो गई है। उसकी नीति अस्पष्ट और ढिलमिल हो गई है। वह कहती कुछ है और करती कुछ है। यह सब समाप्त हो जाना चाहिये। अच्छा तो यह होगा कि बापू की अंतिम आकाँक्षा का आदर कर, राजनीतिक पार्टी के रूप में काँग्रेस को समाप्त कर दिया जाय जिससे काँग्रेस का नाम बदनाम होने से बचा रहे। नहीं, तो इसके प्रत्येक व्यक्ति के कार्यों तथा चलन की सार्वजनिक रूप से जाँच होनी चाहिये, जिससे यह संस्था शुद्ध हो जाय। यदि ऐसा नहीं होता, तो सभी सच्चे तथा ईमानदार व्यक्तियों को काँग्रेस को छोड़ देना होगा। जिस तेजी से काँग्रेस कुछ व्यक्तियों के हाथों में खिलौना होती जा रही है, वह भयावह है।

वास्तव में गाँधीजी की हत्या की बहुत कुछ नैतिक जिम्मेवारी उन काँग्रेसियों पर है जिन्होंने राष्ट्रीयता की आड़ में साम्प्रदायिकता का प्रचार किया। उनके ऐसा करने से दुश्मन समझ गये कि काँग्रेस में फूट पड़ गई है। इसी कारण उनकी यह हिम्मत पड़ गई कि गाँधीजी को मार दें। उन्होंने सोच रक्खा होगा कि गाँधीजी के मरने पर उनके विरोधी कमजोर हो जायँगे।

दूसरे, हमें उन लोगों के विरुद्ध खुला युद्ध छेड़ देना है जो हिन्दू-राज्य, सिख-राज्य, मुस्लिम-राज्य आदि की आवाजें उठाते हैं। हमारे चुप रहने ने उन्हें शेर बना दिया। अब हमें इस प्रकार की विचार-धारा को समूल नष्ट कर देना होगा। हमें अंध और

आक्रमक राष्ट्रीयता का परित्याग करना होगा। इसकी हमें शीघ्रता से रोकथाम करनी चाहिये, नहीं तो स्थिति हाथ से बाहर हो जायेगी।

कुछ लोग पूछते हैं कि ऐसी आफ़त क्या है ? दूसरे लोग कहते हैं कि यह काम हमें कमजोर कर देगा। कुछ लोग तो यहाँ तक बढ़ जाते हैं कि यह कार्य असम्भव है। पर यह काम कठिन भले ही हो, असम्भव नहीं है। और यदि आज इसे हम न कर सके, तो फिर कभी न कर सकेंगे।

पर इन प्रतिक्रियावादी शक्तियों को प्रोत्साहन कौन दे रहा है ? इनके समर्थक वे 'राजा' हैं जो यह देख रहे हैं कि उनके स्वेच्छाचारी शासन का अंत आ गया है और इसलिये धर्म का स्वाँग रचकर ही वे अपना काम बना सकते हैं। इनके साथी वे 'जागीरदार' हैं जिनका भाग्य राजाओं की स्वेच्छाचारिता के साथ जुटा हुआ है। इनके हिमायती वे 'जमींदार' हैं जिनकी जमींदारी किसानों की भलाई के लिये हम ले लेना चाहते हैं। इनके साथी वे 'पण्डे' तथा 'पुरोहित' हैं जो यह समझते हैं कि प्रगतिशील सरकार बन जाने से उनकी रोज़ी मारी जायगी। और साथ में वे 'पूँजीपति' हैं जो काँग्रेस, गाँधीजी नेहरूजी के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों के भी समाजवादी प्रचार से डर कर अपने स्वार्थों की रक्षा का साधन खोज रहे हैं।

इन स्वार्थी लोगों ने जनता की धर्मान्धता तथा पाकिस्तानियों की मूर्खता से लाभ उठाकर एक विषैला प्रचार करना शुरू कर दिया। और बहुत-से लोग बिना समझे-सोचे उसमें बह गये।

अब इन दुश्मनों के मुकाबले में हमें अपने मित्रों को देखना चाहिये। हो सकता है कि उपरोक्त वर्गों के कुछ व्यक्ति हमारी सहायता करें, पर हम उनके भरोसे नहीं रह सकते। प्रगतिशील शक्तियों के सच्चे सहायक तो वह किसान तथा मजदूर होंगे जिन्हें समाजवाद से लाभ होगा। साथ में उन मुसलमानों तथा अछूतों को लिया जा सकता है जिनको इन प्रतिगामियों ने अभी तक दबाया है। यही नहीं

हमारा साथ देने वाली देशी राज्यों की साधारण प्रजा होगी जिसको अभी तक दबा कर रक्खा गया है। इसके अतिरिक्त सभी ईमानदार गाँधीवादी, समाजवादी, साम्यवादी इस पुण्य कार्य में हाथ बँटावेंगे।

यह सच है कि प्रगतिशील शक्तियाँ अभी तक बिखरी पड़ी हैं। यह सच है कि प्रतिगामियों को संगठन अच्छा है। यही नहीं, वे चतुर लोग हैं। पर प्रगतिशील शक्तियों का आधार जनता है जब कि प्रतिगामी शक्तियों का आधार 'निहित स्वार्थ' हैं। इन प्रतिगामियों तो अपना हमला बोल कर हमें चुनौती दे दी। अब हमारी बारी है। जनता ने स्पष्ट बता दिया है कि वह न तो इस गुण्डागीरी को क्षमा करेगी और न मामूली-सा दण्ड देकर इसे भूल जायगी। अब सरकार का यह काम है कि वह ढीलढाल को छोड़ कर जनता की भावना का आदर करे। यदि सरकार सुस्ती करेगी, तो जनता का क्रोध उमड़ पड़ेगा। फिर सरकार ही इसकी दोषी होगी। अतएव सरकार को कड़े कदम उठाने चाहिये।

हो सकता है कि शुरू में कुछ वाधायें आवें। पर विजय हमारी ही होगी होगी। जनता हमारी ओर है। उसे समझा कर पक्का बनाया जा सकता है। सत्य तथा न्याय हमारे पक्ष में है। और सत्य तथा लोकप्रिय कार्य तब तक असफल नहीं होता जब तक उसके नेता उसे धोखा न दें। तो क्या हमारे नेता धोखेबाज़ और कायर हैं? वे कायर नहीं हैं। तो फिर उन्हें जनता का नेतृत्व करना चाहिये। ढिल-मिल नीति का समय गया। अब काम करने का समय है। जनता अब पण्डित नेहरू की ओर इस आशा से देख रही है कि वह प्रतिगामियों की इस चुनौती को स्वीकार कर प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध युद्ध छेड़ देंगे। हम उनके साथ हैं। गाँधीजी का अपने अंतिम लेख में बतलाया गया मार्ग विजय, उन्नति तथा समृद्धि का मार्ग है। इसके विपरीत, दूसरा मार्ग फ़ासिज्म का है। समय आ गया कि हम और हमारे नेता समझें और कार्य करें—समझें और कार्य करें।

: ६ :

संघ एक फ़ासिस्ट संस्था है

राष्ट्रीय स्वयंसेवक सङ्घ के सम्बन्ध में लोग काफ़ी समय तक अनजान रहे। उनका यह विचार रहा कि सङ्घ हिन्दुओं का ऐक्य कराने वाली संस्था है। किन्तु जिन लोगों ने इसकी विचार-धारा तथा कार्य-प्रणाली का अध्ययन कर, इटली तथा जर्मनी के आन्दोलनों से इसकी तुलना की है, वह जानते हैं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, मुस्लिम लीग तथा खाकसार आन्दोलन के समान ही एक फ़ासिस्ट आन्दोलन है। धार्मिक आवरण तो इसने केवल इसलिए रक्खा जिससे लोगों को भ्रम में रखकर इस आन्दोलन को धीरे-धीरे बढ़ाया जा सके।

हिन्दू सङ्गठन की आड़

संघ ने हिन्दू एकता तथा जागरण का बिगुल अवश्य बजाया, किन्तु केवल धोखे में लोगों को रखने के लिये। यह तो केवल इसलिये किया गया कि धर्मान्ध लोगों की मूर्खता से लाभ उठाया जा सके। अतएव इसके आद्य सर-संचालक, डा० हेडगेवार ने कहा कि 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने जब हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दू राष्ट्र का संरक्षण करने के लिये जन्म लिया है, तब वह उस संस्कृति के जो-जो प्रतीक समझे जाते हैं उन सबका संरक्षण निश्चय ही करेगा*।' आगे वह कहते हैं कि 'हमें कुछ नव-निर्माण नहीं करना है।' पर 'सङ्घ संस्कार पर

---

* देखिये 'परम पूजनीय डा० हेडगेवार (नागपुर, १९४३), पृष्ठ १२२

अत्यन्त विश्वास रखता है*।' आगे चलकर वह कहते हैं कि 'अन्य कोई भी नवीन बात सङ्घ को स्वीकार नहीं†। इस प्रकार प्राचीन बातों तथा पुरातनवादिता के नाम पर लोगों को उभाड़ा गया !

मानवता और अहिंसा का विरोध

पर इसके साथ ही, बहुतेरा ज़हर भी उगला गया। मानवता के सिद्धान्त के विरुद्ध आवाज़ उठाई गई—'अपना पेट भरे या न भरे, दूसरों के पेट की चिन्ता करने की विचित्र बात हम लोगों को लग गई है। उसका निमूलन किये बिना हमारी उन्नति होना असम्भव है‡।' यही नहीं, उन्होंने कहा कि 'निरुपद्रवी होना हम लोगों में एक सद्गुण समझा जाता है। हम लोगों की समझ हैं कि कम बोलने वाला मनुष्य बड़ा सज्जन होता है।...इस वर्ग के सज्जन लोगों की हमें आवश्यकता नहीं। चुपचाप कष्ट सहन करने वालों को ही सज्जन समझते रहे और उसी वर्ग के लोगों की वृद्धि करते गये तो इस हिन्दू समाज को संसार में जीवित रहना सम्भव नहीं है और फिर हिन्दुस्तान उन्नति की अवस्था को कभी पहुँच ही न सकेगा§।' कहने का तात्पर्य यह है कि बहुत बोलना, दूसरों के साथ झगड़े करना और कष्ट सहन करने के स्थान पर कष्ट पहुँचाना ही संघियों का ध्येय बन जाना चाहिये।

सब तज, संघ भज

डा० हेडगेवार कहते हैं कि 'केवल एक घण्टा सङ्घ स्थान में आने से काम पूरा हो जाता है ऐसा नहीं है। किन्तु विद्यार्जन उत्तम प्रकार से होवे और तुम शीघ्र बड़े होकर सङ्घ का काम करो, इसीलिये बाकी का समय तुम्हारे लिये छोड़ दिया गया है। परन्तु विद्यार्जन होने के उपरान्त सङ्घ के सिवाय तुम्हारे सामने दूसरा ध्येय रह ही नहीं सकता,

---

* उपरोक्त, पृष्ठ १२३

† उपरोक्त, पृष्ठ १२३

‡ उपरोक्त, पृष्ठ १२४

§ उपरोक्त, पृष्ठ १२८—१२६

इस दृष्टि से कार्य करो* ।' यही नहीं, वह कहते हैं—'सारांश यह कि तुम्हारी नौकरी सङ्घ के लिये है, तुम्हारा कुटुम्ब सङ्घ के लिये है, ऐसा लोग तुम्हें कह सकें, इस प्रकार तुम्हारा सब समय बर्ताव होना चाहिये† ।'

ध्येय न पूछो, संगठन करो

लोग पूछते थे कि इस हिन्दू सङ्गठन का आखिर उद्देश्य क्या है ? राजनीतिक क्षेत्र में आप क्या करना चाहते हैं ? सामाजिक क्षेत्र में आपके क्या विचार हैं ? धार्मिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में आप क्या सुधार करेंगे ? डाक्टर साहब को ऐसी बातें बड़ी अरुचिकर लगतीं थीं। क्यों न लगेंगीं बुरी यह बातें, इनका उत्तर देने से सङ्घ की पोल जो खुलती थी ! अपने एक पत्र में जो उन्होंने ११-१२-३६ को लिखा था, वह कहते हैं कि "जहाँ खास नागपुर में भी सङ्घ के अतिरिक्त अन्य लोग 'सङ्गठन केवल सङ्गठन के लिये है' यह तत्व अभी तक नहीं समझ पाये हैं, फिर भला इतने अल्पकाल में, इसी तत्व की अनुभूति····· लोगों को कैसे हो‡ ?" इस पत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि बहुत निकट के व्यक्तियों को भी संघ का ध्येय स्पष्ट नहीं बतलाया गया। केवल 'हिन्दू' के नाम पर लोगों को बुलाया जाता था। एक बार सङ्गठन बन जाने पर तो फिर संघ के नेता जो चाहें वह करा सकते थे।

अपनी मृत्यु के पूर्व, हेडगेवारजी ने अपने अन्तिम सन्देश में भी इस धुन को न छोड़ा। उन्होंने कहा—'हिन्दू जाति का अन्तिम कल्याण संगठन के द्वारा ही हो सकता है। दूसरा कोई भी काम करना राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ नहीं चाहता। यह प्रश्न कि आगे चलकर संघ क्या करने वाला है, निरर्थक है§ ।' निरर्थक तो वह है ही ! उसको बतला

---

* उपरोक्त, पृष्ठ १२६-१३०

† उपरोक्त, पृष्ठ १२७

‡ उपरोक्त, पृष्ठ ११४

§ उपरोक्त, पृष्ठ ३४

कर संघ के आद्य सर-संचालक अपना अन्त बुलाते क्या ? इसीलिए तो वह कहते थे कि एक बार जो संघ में आ जावे, वह उसके बाहर न जा पाय। 'जहाँ कोई एक बार हमारे बीच आया कि वह हमारा ही हो गया—हमसे दूर होने का नाम भी न लेवे*।' यदि वह हाथ से निकल गया और उसने संघ की पोल खोलना शुरू कर दिया, तो कठिनाई उपस्थित हो जायगी।

हिन्दुस्तान हिन्दुओं का है

"हिन्दुस्तान" केवल हिन्दुओं का है। डा० हेडगेवार कहते हैं कि यह नाम प्राचीन काल से चला आया है†। वस्तुस्थिति यह है कि "हिन्दू" नाम और "हिन्दुस्तान" नाम दोनों ही विदेशियों के दिये हुये हैं। इन दोनों का ही 'सिन्ध' नदी से सम्बन्ध है। विदेशी 'सिन्ध' को हिन्द पढ़ते तथा उच्चारित करते थे। अतः सिन्ध पार के रहने वालों को उन्होंने 'हिन्दू' कहा और उनके देश को 'हिन्दुस्तान'। हमारे किसी भी प्राचीन धर्म-ग्रन्थ में ये शब्द नहीं मिलते। पर हेडगेवारजी को सत्य से क्या वास्ता !!

आगे वह कहते हैं, 'कई सज्जन यह भी कहते हुये हिचकिचाते हैं कि हिन्दुस्तान केवल हिन्दुओं का ही कैसे ? वह तो उन लोगों का है जो यहाँ बसते हैं। मुझे दुःख है कि इस प्रकार आक्षेप करने वाले सज्जनों को "राष्ट्र" शब्द का अर्थ-ज्ञान कुछ भी नहीं है‡।' तो हमको देखना चाहिये डा० साहब का यह अर्थ-ज्ञान ?

राष्ट्र शब्द की व्याख्या

राष्ट्र किसी ज़मीन के टुकड़े का नाम नहीं है। 'राष्ट्र तो किसी समान भूमि में सनातन समय से रहने वाले उन लोगों का बनता है जो एक विचार, एक आचार, एक सभ्यता एवम् एक ही परम्परा के

* उपरोक्त, पृष्ठ ८५

† उपरोक्त, पृष्ठ ५१

‡ उपरोक्त, पृष्ठ ५२

अभिमानी होते हैं*।' मैं डा० साहब को मृत आत्मा और उनके जीवित समर्थकों से यह प्रश्न पूछता हूँ कि वह ईमानदारी से यह बतलावें कि सीमाप्रान्त के हिन्दू, सिन्ध के हिन्दू, बंगाल के हिन्दू, दक्षिण के हिन्दू में क्या समान आचार, विचार, भाषा तथा परम्परा है? केवल अन्धे व्यक्तियों के अतिरिक्त और कौन इन बातों को मान सकता है। यदि उनमें कोई भी एकता है तो यह कि वे सभी अपने को हिन्दू कहते हैं। मैं इन लोगों को खुली चुनौती देता हूँ कि यह उन आचार, विचार, सभ्यता के उपकरण तथा परम्पराओं की स्पष्ट व्याख्या तथा घोषणा करें जो हिन्दुओं को अन्य हिन्दवासियों से पृथक और आपस में एक करती हों। पर इन धर्मान्धों को इससे क्या मतलब! उन्हें तो यह कहना सिद्ध है कि 'हम सब हिन्दू तत्वत: एक राष्ट्र हैं†।'

हिन्दू संस्कृति के नाम पर ढोंग

सङ्घ को नवीन विचार-धारायें कतई पसन्द नहीं हैं। गोल्वल्कर जी का कहना है कि हमारी सभी पुरानी बातें अच्छी हैं। उन्हीं को हमें अपनाना है। जो लोग जाति-प्रथा, अन्ध-विश्वास, अशिक्षा तथा अन्य कुरीतियों को बुराइयों की जड़ बतलाते हैं‡, वे भोंदू, नासमझ, अज्ञानी और मूर्ख हैं। ऐसे ही 'आंग्लशूद्रों' ने हिन्दू राष्ट्र का सर्वनाश किया है। क्या मैं गोल्वल्करजी से पूछ सकता हूँ कि गाली देना ही क्या आपकी सभ्यता, संस्कृति तथा शिष्टता का प्रतीक है? क्या इसी के लिए आप 'हिन्दू' नाम को बदनाम कर रहे हैं? यही हैं आपके पूर्वजों की रीति जिसको आप फिर से चालू करना चाहते हैं? पाठक पढ़ें और समझें। साथ ही वह स्मरण रक्खें कि इन कुरीतियों के विरुद्ध आर्य समाज, ब्राह्म समाज, गाँधीजी, काँग्रेस और ऊपरी मन से महासभा भी आवाज उठा रही है। तो क्या ये सभी 'आंग्लशूद्र', 'भोंदू' और

---

* उपरोक्त, पृष्ठ ५२-५३

† उपरोक्त, पृष्ठ १२७

‡ We, or our Nationality Defined, by M.S. Golwalkar, pp. 62-63.

'मूर्ख' हैं। हमें शोक होता है गोल्वल्करजी कि मुसोलिनी तथा हिटलर के साहित्य का अध्ययन करने से आपकी मति-भ्रष्ट हो गई है। तभी तो आप अपनी पुस्तक में हिटलर की प्रशंसा करते नहीं अघाते !!

शक्ति के उपासक

डा० साहब ने कहा कि अहिंसा का मार्ग कायरों का है। अतएव हमें शक्तिशाली बनना चाहिये। शक्ति के द्वारा ही अपने विरोधियों को हम दबा सकेंगे। 'केवल इच्छामात्र से कार्य नहीं होगा। प्रत्यक्ष भगवान् को भी दशावतार लेकर मनुष्य शक्ति का सहारा लेना पड़ा था। इसको लोग पशु शक्ति कहते हैं। किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि धर्म रक्षा (?!) व जनकल्याण (?!) के लिये जो शक्ति काम में लाई जाती है, उस पवित्र शक्ति को लोग 'पशु-शक्ति' कैसे कह सकते हैं? ......जहाँ सारे स्वयंसेवकों की मनोवृत्ति संयमय हो गई, फिर हमारे उद्देश्य तक पहुँचने में देर नहीं*।'

जब मित्रों ने विरोध किया, तो गुरूजी बोले, 'आरम्भ में कई दिनों तक अनेकों सच्चे हितचिन्तकों के मन में भी संघ के विषय में भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ थीं। अनेकों को संघ केवल एक अखाड़ा मालूम पड़ता था, दूसरों को सेवासमिति तथा स्काउट का पथक।..... कितने ही बुद्धिमान लोग तो संघ को गोला-बारूद तथा शस्त्रास्त्रों को एकत्रित करने वाले क्रान्तिकारियों (?) का एक दल ही समझ बैठे थे†।' क्यों गुरूजी, आपके मित्रों में यह धारणा क्यों फैली? इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ से ही यह एक प्रतिगामी षड्यन्त्रकारियों का दल था।

विपक्षियों को अहिंसा सिखलावेंगे

स्वय तो वह अहिंसा को कायरों का मार्ग समझते हैं। पर अन्य लोगों को इसका पाठ पढ़ाने का उत्तरदायित्व वह अपना समझते हैं। इसके लिये शक्ति-निर्माण आवश्यक है। 'अतः जब तक हम पर्याप्त

---

* उपरोक्त, पृष्ठ ५७-५८

† उपरोक्त, पृष्ठ २०

शक्ति-निर्माण नहीं करते, हमें निरन्तर कार्य करते रहने होगा*।' तभी दूसरे लोग सन्घियों की बात मानेंगे। 'अतएव अहिंसा की घूँट हिंसात्मक वृत्ति के लोगों को यदि पिलाना हो तो उस पर हमारे उपदेश का परिणाम हो सकेगा, इतने प्रमाण में हमें सामर्थ्यशाली बनना चाहिये†।' तो यह चाल है उन लोगों की जो धर्म के नाम पर हमें मूर्ख बनाने चले हैं।

आज़ादी की लड़ाई के समय कहाँ थे ?

इन लोगों ने बातें तो बढ़-बढ़ की, पर काम ठोस करके न दिखलाया। ये कहते थे कि हम अँगरेजों तथा मुसलमानों दोनों को देश से निकाल देंगे। पर जब आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी, तो यह लोग खोह में छिपे बैठे थे। जब यह कहा गया तो डा० साहब बोले कि 'हमें यह कदापि न भूलना चाहिये कि गुलाम राष्ट्र के लिये राजनीति का अस्तित्व भी नहीं रह सकता।' अत: राजनीति से हम पृथक हैं।

इन महापण्डितों को कोई कैसे समझाये कि किसी देश के गुलाम रहने पर गुलामी के विरुद्ध लड़ना हो उसका सच्चा धर्म हो जाता है! पर समझें तो वह जो अनजान हों; उनका क्या किया जाय जो जान-बूझकर अनजान बने हैं ?

पर क्या राजनीति से यह तटस्थ थे ? अँग्रेज अधिकारियों की रिपोर्टों से तो यह पता चलता है कि वह इन्हें काँग्रेस का दुश्मन समझकर पनपने दे रही थी। कहा जाता है कि सन् १९४२ ई० में सरकार के राजनीतिक विभाग ने एक मोटी पुस्तकाकार सलाह देशी राज्यों को भेजी थी जिसमें संघ के कार्यों तथा उसकी नीति पर प्रकाश

* उपरोक्त, पृष्ठ ५५

† उपरोक्त, पृष्ठ १२५. यह वाक्य अशुद्ध है। उपदेश के स्थान पर 'उपदेशों', परिणाम के स्थान पर 'प्रभाव' और प्रमाण के स्थान पर 'परिमाण' होना चाहिये।

डालते हुये कहा गया था कि वे समझ सोचकर अपनी नीति स्थिर करें। क्या इससे भी अधिक खुला प्रोत्साहन हो सकता है ?

पर ऐसा क्यों हुआ ? संघ वालों की नीति अँग्रेजों के विरुद्ध न होकर केवल मुसलमानों के विरुद्ध थी ? यही नहीं, गाँधीजी तथा जवाहर को गालियाँ देना वह अपना परम धर्म समझते थे। इससे अच्छी बात इन लोगों के लिये क्या हो सकती थी। इसीलिये न तो सङ्घ ने अँग्रेजों के विरुद्ध आवाज़ उठाई और न अँग्रेजों ने सङ्घ के विरुद्ध।

मुसलमानों के विरुद्ध प्रचार

तो सङ्घ ने अपने विषैले प्रचार का लक्ष्य मुसलमानों तथा काँग्रेस को बनाया। यह कहा गया कि भारतवर्ष में सारे दोष मुसलमानों के साथ आये। अब आप श्रीयुत रानाडे के मुख से, जो भारतीय संस्कृति तथा दर्शन के प्रख्यात विद्वान है, मुसलमानों के प्रभाव के बारे में सुनिये। वह कहते हैं कि मुसलमानों के आने पर ब्राह्मण राजनीतिक क्षेत्र में आ गये, क्षत्रियों में भोग-विलास छोड़कर वीरता की ओर ध्यान दिया, वैश्यों का बाहरी देशों से सम्पर्क बढ़ा, व्यापार तथा वाणिज्य बढ़ा और शूद्र लोगों के साथ व्यवहार कुछ अच्छा हुआ। साधुओं के नंगेपन को रोका गया। हिन्दू तथा मुस्लिम सन्तों के हृदय मिले और धर्म की एक नई धारा बहने लगी। लोगों की रुचि परिष्कृत हो गई। शिल्प तथा ललित कलाओं में उन्नति हुई। उनके कारण धार्मिक सुधार की लहरें फैलीं*। ये शब्द हैं एक ऐसे विद्वान के जिनका सभी संस्कृतज्ञ समान रूप से आदर करते हैं। पर जो अपना स्वार्थ सीधा करना चाहते हैं उन्हें सत्य से क्या मतलब !

मुसलमान विदेशी हैं

कहा गया कि मुसलमान लोग तो विदेशी हैं। अतएव यहाँ रहने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। यदि सचमुच, विदेशियों का

---

* देखिये S. V. Puntambekar, An Introduction to Indian Citizenship and Civilisation, p. 37,

भारत में रहने का अधिकार नहीं है तो द्रविड़ों तथा हरिजनों को छोड़ कर शेष सभी को भारत छोड़ देना होगा। यही नहीं भारतीयों को दक्षिणी अफ्रीका, फिजी, बर्मा, लंका, मलाया, कनेडा, संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) आदि सभी देशों से या तो निकल आना होगा अथवा वहाँ पर राजनीतिक अधिकारों से बंचित हो जाना पड़ेगा। पर गोल्वल्करजी को इससे क्या मतलब! उनके विचारों का प्रभाव प्रवासी भारतीयों पर पड़ेगा, इसका उन्हें ध्यान तो तब आता जब उन्हें "जनहित" अथवा "जनतंत्र" में आस्था होती।

मुसलमान देशघाती हैं!

संघियों को इस असत्य प्रचार से ही संतोष न हुआ। उन्होंने यह भी कहा कि मुसलमानों ने सदैव देश को धोखा दिया है। कभी भी समय पर उन्होंने आज़ादी के आन्दोलन का साथ नहीं दिया। बात एक दम उलटी है। संघियों ने आजादी की लड़ाई में पीठ फेरी, पर मुसलमानों ने नहीं। उन्होंने औरंगजेब के समय से लेकर अब तक हिन्दू भाइयों के कन्धे से कन्धा भिड़ाकर बराबर लड़ाई में साथ दिया।

झूठा प्रचार क्यों?

तो यह सब झूठ बातों को क्यों कहा जा रहा था। कारण स्पष्ट है। जिन लोगों का स्वाधीनता से कभी प्रेम नहीं रहा, जो सदैव स्वेच्छाचारिता के समर्थक रहे, जिन्होंने वृन्दावन में साफ़-साफ़ कहा 'कि राजतंत्र ही सच्चा प्रजातंत्र है', वही लोग अपने स्वार्थ के लिये धर्म तथा सम्प्रदाय के नाम पर लोगों को उभाड़ रहे थे। इन्होंने लोगों को उभाड़ कर पहले तो दंगे कराये। फिर स्वयं हिन्दुओं के रक्षक बन बैठे। यह बात लीग, अकाली दल, सभा, संघ, जाट-जगत् सभी पर समान रूप से लागू होती है। तो इन धर्म के ठेकेदारों ने धर्म के सच्चे तत्वों—सहिष्णुता, सत्य मानवता तथा विश्व-बंधुत्व को केवल भुला ही नहीं दिया वरन् इनके विरोधी तत्वों का प्रचार किया और अधर्म को प्रोत्साहन दिया।

: ७ :

समस्या का मर्म

तो वास्तव में यह विचार-धाराओं का एक संग्राम है। इनमें एक विचार-धारा प्रगतिशील है और दूसरी प्रतिगामी, एक अच्छी है और दूसरी बुरी। प्रतिगामी शक्तियों ने इस युद्ध में पहले गोले दाग दिये हैं। दुर्भाग्यवश, हम यह जान भी न सके कि कोई संग्राम होगा। अतएव हमारा प्रधान सेनापति इस धोखाधड़ी की लड़ाई में खेत रहा। एक सच्चे हिन्दू को हिन्दू स्वार्थियों तथा गुण्डों ने मार गिराया। पर क्या इसका अभिप्राय यह है कि हम हार गये ?

नहीं, हम हारे नहीं, पहली बात तो यह है कि यह संग्राम निमंत्रण देकर शुरू नहीं किया गया। हमको अब तक किसी ने लड़ने की खुली चुनौती न दी थी। इसके पहले कि हम यह जान सकें कि क्या हो रहा है, हमारे विपक्षी ने अधर्म की लड़ाई में हमें गिरा दिया। पर हम हारे नहीं हैं। हम लड़ने से डरते भी नहीं। हम अभी तक बराबर लड़ते आ रहे हैं और अब भी लड़ने को तत्पर हैं। पहले हम अँग्रेजों से लड़े। अब यदि हमारे भीतर के ही प्रतिक्रियावादी चाहेंगे तो उनसे भी हम लड़ेंगे। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि प्राण रहते हम प्रतिगामी शक्तियों का मुकाबला करते रहेंगे। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि या तो हम इन प्रतिक्रियावादियों को सुधार देंगे या इनका नाश कर देंगे। हम गुण्डागीरी द्वारा अपने सार्वजनिक जीवन

को कदापि बिगड़ने न देंगे। हम अपने किसी भी नेता का ऊपर आघात हरगिज सहन न करेंगे। हम ऐसा होने के पहले ही राष्ट्र-विरोधियों का अन्त कर देंगे।

गाँधी जी की हत्या करके प्रतिक्रियावादी जीते नहीं है। उनका कायरतापूर्ण ढंग ही यह स्पष्ट कर देता है कि उनकी कठिनाइयाँ बढ़ती जा रहीं थीं। उन्होंने गाँधीजी के विरुद्ध प्रचार किया, पर वह असफल हो गया। जब उन्होंने देखा कि गाँधी उनके करे-कराये पर पानी फेरे दे रहा है तो उन्होंने बापू को उठा देने की ही ठान ली। उनके सन्मुख प्रजातंत्रवादी मार्ग खुला था। पर इसके द्वारा अपनी बात मनवाने की उन्हें आशा न थी। इसी कारण, उन्होंने सदा अपनी कार्यवाहियों को गुप्त रक्खा। यदि वह स्पष्ट बातें करते, तो जनता उनकी बात न मानती। अतएव धर्म के नाम पर ढकोसला रचा गया। ईमानदारी, सत्य तथा प्रजातंत्र का रास्ता उन्हें पसन्द न था। हिंसा तथा गुप्त ढंग से वह अपना काम बनाना चाहते थे। जो संस्थायें अपने उद्देश्य को छिपाती हैं, अपने विचारों के सम्बन्ध में आलोचना नहीं सह सकतीं, वे निश्चय ही प्रजातन्त्र की दुश्मन हैं। बहुत सम्भव यह है कि वे स्वार्थियों की षड्यन्त्रकारी गुट्टबन्दियाँ हों, जो ऊँचे आदर्शों के नाम पर अपना उद्देश्य छिपा रहीं हों।

इसका अभिप्राय यह नहीं है कि इन संस्थाओं के साधारण सदस्य भी ऐसे ही हों। ऐसा सोचना ठीक न होगा। हो सकता है कि कुछ नेताओं तथा स्वार्थियों को छोड़ कर शेष लोग यह जानते तक न हों कि जिस संस्था के वे सदस्य हैं उसका कुछ गुप्त लक्ष्य भी है। वे तो अनजाने में दुष्टों के हथियार बन जाते हैं। विशेषतया, नवजवानों को गुप्त तथा सैनिक संस्थाओं का सदस्य बनने का एक विशेष चाव होता है। अतएव, साधारण सदस्यों को दण्ड न देकर, बड़े-बड़े नेताओं तथा व्यक्तियों को ही पकड़ना चाहिये।

यही बात इन प्रतिक्रियावादी संस्थाओं के बारे में हुई। जब तक जिन्ना ने प्रतिक्रियावादी नारा न लगाया, ये लोग भी दबे रहे।

जिन्ना के सामने आते ही इन्होंने भी अपनी साँठ-गाँठ कर अपना बल बढ़ाना शुरू कर दिया। जिन्ना की नीति ने अनेक हिन्दुओं को भी प्रतिक्रियावादी बना दिया। सन् १९४२ की घटनाओं ने—जापान विजय, क्रिप्स मिशन तथा अगस्त आन्दोलन—नवयुवकों को ऐसे ग़लत विचारों की ओर प्रेरित किया यदि ब्रिटिश सरकार को घुटने टिकवाये जा सकते हैं तो क्या मुसलममानों के साथ यही नहीं हो सकता? इसी कारण, जहाँ अधिकतर मुसलमान लीग में शामिल हो रहे थे, अनेक नवयुवक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में भरती हो गये। इसके सदस्यों की संख्या १९४०-४५ ई० के मध्य चन्द हजारों से बढ़ कर १३ लाख हो गई बताई जाती है। पर संघ ही क्या, चारों ओर नई-नई प्रतिक्रियावादी संस्थाओं की बाढ़ सी आ गई थी। स्वयं काँग्रेस में संघ की मनोवृति वाले अनेक सदस्य भर आये थे। अनेक पुराने काँग्रेसी संघ में खुल्लम खुल्ला भाग लेने लगे और उसकी हिमायत करने लगे थे। पिछले ३ वर्ष के भाषणों को यदि कोई व्यक्ति देखे तो उसे आश्चर्य होगा कि अनेक काँग्रेसी सभा, और संघ के सुर में सुर मिला कर बोल रहे थे।

दोनों ही सम्प्रदायों मे प्रतिक्रियावाद का बोलबाला हो रहा था। परिणाम यह हुआ कि दोनों ही पक्ष दिन पर दिन उग्र होते गये। दंगे बढ़ने लगे। लूट-मार, हत्या और बलात्कार का बाजार गर्म हो गया। आग लगाना और स्त्रियों को भगाना एक साधारण-सी बात हो गई। इस सब के बीच में कभी-कभी एक शान्त स्वर सुनाई पड़ जाता था। पर यह नक्कारखाने में तूती के समान था। देश के विभाजन के पूर्व तथा बाद में जो घटनाएँ हुई हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सहिष्णुता तथा मानवता जैसे नाम की कोई वस्तुएँ न रह गई थीं। हम एक दूसरे को भूखे बाघ की तरह ताक रहे थे कि अवसर मिलते ही विपक्षी को कच्चा चबा जायँ। कलकत्ता, नौआखाली, बिहार, गढ़मुक्तेश्वर, पञ्जाब इत्यादि की घटनाओं से ऐसा लगने लगा था मानो एक-दूसरे को मिटा देने के लिये एक अन्तिम युद्ध शुरू हो गया हो।

बापू को इस प्रकार भाई-भाई की लड़ाई से बहुत अरुचि थी। उनके कोमल हृदय को यह दंगे करारी चोट लगा रहे थे। उनका हृदय चलनी हो गया था। पर उन्होंने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि वह साम्प्रदायिक एकता के लिये अपने प्राणों की बाज़ी लगा देंगे। लोगों ने उन्हें 'अव्यवहारिक आदर्शवादी' बतलाया। कुछ लोगों ने यहाँ तक कहा कि गाँधीजी हिमालय चले जायँ। पर, बापू अटल और अजेय बने रहे। उनका हृदय इन बातों से बहुत संतप्त रहता था। पर वह न तो घबड़ाये और न अपने पथ से डिगे। जिस समय चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखलाई देता था, केवल पण्डित नेहरू ने पूरी तरह उनका समर्थन किया। अन्य लोग या तो कुछ निश्चय न कर पाते थे, या डिग रहे थे। कुछ लोग तो इन घटनाओं से इतने स्तब्ध हो गये कि उनकी समझ ही काम न देती थी। पर गाँधीजी अपना कार्य करते ही रहे। वह कभी नौआखाली, कभी कलकत्ता, कभी पटना और फिर देहली घूमते फिरे। उनके अथक प्रयत्नों का परिणाम भी अच्छा निकला। लोग उनकी वाणी को फिर चाव से सुनने लगे।

इस बात से प्रतिगामियों को बहुत क्रोध आया। उन्होंने सोचा कि यह व्यक्ति उन्हें बदला नहीं लेने देता। उन्होंने समझा कि यह व्यक्ति तो हिन्दुओं का दुश्मन है। परन्तु गाँधीजी के विरुद्ध उनके सभी प्रचार व्यर्थ गये। यह देख कर इन लोगों के दिल पर साँप लोटने लगा। गाँधीजी का प्रभाव फिर बढ़ता जा रहा था। उनके सारे मन्सूबों पर पानी फिरने के आसार दिखलाई दे रहे थे। अतएव उन्होंने उग्र कदम उठाने की ठानी।

कहा जाता है कि गाँधीजी तथा पण्डित नेहरू को मारने की योजना मेरठ में अक्तूबर १६४७ ई० में बनाई गई थी। उसी समय देहली में वह पर्चे बँटे थे जिनमें महात्माजी को 'गुण्डा' तथा 'गद्दार' कहा गया था और लोगों से कहा गया था कि वे उस वर्ष की विजया-दशमी 'उस युग के रावण' को मारकर मनावें। राजा, जागीरदार, ज़मींदार और कुछ सेठ रुपये दे रहे थे। कई देशी रियासतों ने खुल्लम-

खुल्ला शस्त्र देने का वचन दे रक्खा था। इन आश्वासनों से संतुष्ट होकर, गुण्डों ने बापू पर अपना पहला प्रयत्न किया, पर वह असफल रहे। दूसरा प्रयत्न पण्डित नेहरू पर २६ जनवरी, १६४८ ई० को अमृतसर में किया जाने वाला था। पर जनता तथा पुलिस के सहयोग से यह प्रयत्न भी विफल हो गया। पर हम सदा ही इतने भाग्यवान तो न हो सकते थे। अन्त में उन्होंने हमारे सेनानी को मार ही दिया। उनके बम्बई में लगाये गये पर्चों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अगला नाम, पण्डित नेहरू का है।

पर, क्या हम ऐसा होने देंगे? क्या हम पण्डित नेहरू को खोकर सरलता से अपना काम चला सकेंगे? क्या हम प्रतिक्रियावादियों और प्रतिगामियों को विजयी हो जाने देंगे? क्या हम एक फ़ासिस्ट, पूँजीवादी, धर्म-प्रधान राज्य बन जाने देंगे। यदि नहीं, तो स्पष्ट सोचना सीखिये। अपने विचारों को सुलझा कर, उन विचारों का प्रचार कीजिये। दूसरों को समझाइये। समझ कर उन आदर्शों पर चलिये भी जिन्हें आप मानते हैं। यही आपकी बापू के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि हो सकती है।

: ८ :

अब हम क्या करें?

बापू के बलिदान ने हमारे मन में एक उथल-पुथल सी मचादी है। यह एक शुभ चिंह है कि अब हमने सोचना शुरू कर दिया गया है। पर हम यदि सोचते ही रह गये, तो कुछ भी काम नहीं बनने का। कोरी बातें बनाना वृथा है। हम सोचें अवश्य, पर सोचकर कार्य भी करें। तभी और केवल तभी हम बापू के कार्य को आगे बढ़ा सकेंगे। केवल तभी, हम बापू की अन्तिम आकांक्षा पूरी कर सकेंगे। हमें बापू की कामना को पूरा करने के लिये तन और मन से जुट जाना चाहिये। हमको सोचना भी चाहिये और साथ ही अपने विचारों को कार्य रूप में परिणित भी करना चाहिये। तभी हमें सफलता मिल सकेगी।

गुस्सा रोकिये

पर हम प्रारम्भ कहाँ से करें। सबसे पहला काम जो हम कर सकते हैं और जिसे हमें करना चाहिये, वह यह है कि हम अपने कार्यों पर काबू रखें। यदि हमने गुस्से में आकर कोई हिंसात्मक कार्य कर दिया, तो प्रतिगामी लोग 'शान्ति और सुव्यवस्था' के नाम पर हमको कुचल डालने का भरपूर प्रयत्न करेंगे। अतएव हमें किसी को ऐसा अवसर नहीं देना है जो हमको तो 'परिस्थितियों से बेजा फ़ायदा उठाने वाला' कहकर बदनाम करे, पर स्वयं बराबर बेजा फ़ायदा उठा रहा हो। यही नहीं, ऐसे छिपे रुस्तम इस बात की फ़िराक़ में हैं कि कोई भी उन्हें

ऐसा बहाना मिल जाय जिससे वे जनवादी शक्तियों को कुचल दें। अतएव, हमें सतर्क रहने की आवश्यकता है।

सोचिये और समझिये

तो हम कानून को स्वयं अपने हाथों में न लें। पर हम इस दुर्घटना पर अच्छी प्रकार सोचें। गाँधीजी की हत्या किसने की? क्यों की? उनकी हत्या का प्रचार कब से हो रहा था? कौन कर रहा था यह? हमारी सरकार क्या कर रही थी? गाँधीजी को बचाये जाने के लिये समुचित प्रबन्ध क्यों न हो सका? गाँधीजी के निधन पर किसने क्या कहा? जो कुछ भी कहा जा रहा है उसका अभिप्राय क्या है? गाँधीजी के न रहने पर कौन ऐसे लोग हैं जो सच्चे हृदय से उनकी बातें मानते हैं? कौन अब भी अपनी मक्कारी से बाज़ नहीं आ रहे? ये ऐसे प्रश्न हैं जो आपके मन में उठते होंगे। मैंने अपने ढंग से उनका उत्तर सुझाया है। पर मेरी बातें मान लेने का मेरा आग्रह नहीं है। आप स्वयं सोचिये और समझ कर कार्य कीजिये।

मानसिक क्रान्ति की आवश्यकता

याद रखिये कि बापू को एक व्यक्ति ने नहीं मारा। उनकी मृत्यु के पीछे हजारों स्वार्थियों और लाखों अनजाने, भोले-भाले लोगों का हाथ है। अतएव, स्वयं अपनी ओर आप देखिये और अपने दिल से ईमानदारी से पूछिये कि कहीं आप भी तो, बिचारों में ही सही, उनके साथी तो नहीं हैं? यदि ऐसा है तो आपके विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होने चाहिये।

अपने दिल को साफ़ कर, फिर आप बाहर टटोलिये। अपने मित्रों और साथियों को समझाइये। मीठी बातों की अब आवश्यकता नहीं है। उनसे काम भी नहीं चलने का। आप उनसे स्पष्ट कहिये कि इसके बारे में आपकी क्या राय है। पर उनसे घृणा न कीजिये। उनके विचारों को बदलने में, आप उन्हें सहायता दीजिये।

हो सकता है कि कुछ लोग यह कहें कि इस प्रकार तो आपकी सबसे दुश्मनी हो जायगी पर यदि बापू को आपने समझा है, तो सत्य के आगे आप सब को छोड़ दीजिये। याद रखिये, सच्ची मित्रता उन्हीं लोगों में हो सकती है जो अप्रिय सत्य कहने में नहीं हिचकिचाते। पर यदि मित्रता और लोकप्रियता की आपको अत्याधिक चाह है तो आप छोड़ दीजिये सत्य और ईमानदारी के राह को। वह रास्ता तो काँटों से बिछा पड़ा है। उस पर चलना कायरों का मार्ग नहीं है।

परखने की सच्ची कसौटी

याद रखिये कि कोई व्यक्ति अपने पिछले कामों के कारण ही महान् तथा पूज्य नहीं हो जाता। बापू ने सन् १९४५ ई० से अपनी मृत्यु तक जितना कार्य किया, वह यदि वे न कर जाते तो आज शायद उनके लिये सच्चे दिल से रोने वाले लाखों की संख्या में न मिलते। तो आप व्यक्ति को उसके पिछले त्याग से पहिचानना छोड़िये। मेरे कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि मैं पिछले त्याग को भुला देने के लिऐ आपसे कह रहा हूँ, वरन् केवल यह है कि आप यह भी देखें कि कहीं वह पिछली आग जिसके कारण उन्होंने त्याग किया, बुझ तो नहीं गई है? क्या वह जनता के सम्मान से बेजा फ़ायदा उठा कर जनता का गला तो नहीं दबा रहे? के० एम० मुंशी जैसे रंगे सियारों से हमें सावधान रहना चाहिये। उदयपुर की जनता उन्हें कभी क्षमा नहीं कर सकती। इसी प्रकार औरों के बारे में सोचिये। यह देखिये कि वे जो कार्य कर रहें हैं, वे जनता का भला यथार्थ में कर रहें हैं कि नहीं? कहीं यह तो नहीं है कि जनता की भलाई की आड़ लेकर, लोग जनता के हितों पर कुठाराघात कर रहें हों। तो प्रत्येक व्यक्ति की जाँच उसके प्रत्यक्ष कार्यों से कीजिये, न कि पिछले कार्यों से। पिछली बातों या उनकी थोथी बातें सुन कर तो आप उसी प्रकार भ्रम में पड़ जायँगे जैसे कि अभी तक संघ के चक्कर में बहुत से लोग पड़े थे।

समझकर काम कीजिये

तो पहले अपने मष्तिष्क साफ़ कीजिये। फिर इतना साहस लाइये कि आप अपने विचारों के अनुरूप कार्य कर सकें। ऐसा हो जाने पर आप दूसरों पर भी प्रभाव डालिये। उन्हें भी सहायता दीजिये, जिससे वह भी इस मानसिक क्रान्ति के कार्य को पूरा कर सकें। यही नहीं, आप अपने व्यवहारिक जीवन में प्रत्यक्ष यह दिखला दीजिये कि आप वही कहते हैं जो करते है।

अपनी सरकार पर प्रभाव डालिये

एक बात आप और भी कर सकते हैं। वह यह है कि आप अपनी वाणी तथा कर्म द्वारा सरकार को यह बतला दें कि आप क्या चाहते हैं। केन्द्रीय सरकार में यदि श्यामाप्रसाद मुकर्जी जैसे अनेक सम्प्रदायवादी हैं तो अनेक ईमानदार व्यक्ति भी। आप उन्हें बतलाइये कि आप क्या चाहते हैं। यदि आप मूलतः उन बातों से सहमत हों जो साथ लगे प्रतिज्ञा-पत्र में हैं, तो आप उसे भरकर पण्डित नेहरू को भेज सकते हैं। इससे पण्डितजी को बल मिलेगा और वे मंत्रिमंडल के अन्दर प्रतिगामियों की चालों को बेकार करने का साहस ला सकेंगे। इस प्रकार आप बापू को सच्चे मन से एक हार्दिक श्रद्धांजलि भेंट कर सकते हैं। नहीं तो ऊपरी आँसू दिखलाने से कोई लाभ नहीं। इससे बापू की आत्मा को दुख होगा। अतएव, ईमानदार और साहसी बनिये।

: ६ :

सरकार अपनी नीति की स्पष्ट घोषणा करे

हम तो अपना काम करेंगे ही, पर अपने नेताओं और सरकार से हम क्या चाहते हैं ? हम चाहते हैं कि वे भी साहस का परिचय दें। अवसरवादी नीति त्याग कर वह जनता को सचाई तथा ईमानदारी का रास्ता बतलावें। इससे जनता में जो असमर्थ होने की भावना फैल रही है, वह रुक जायगी। इससे जनता को यह पता चल जायगा कि हमारे नेता कोरी गप्प लड़ाना ही नहीं जानते, काम भी कर सकते हैं। ऐसा हो जाने से जनता का जोश तथा क्रोध भी क्रियात्मक दिशा में लग जायगा।

विश्वासघाती तरीक़ा

पर काम कई तरह का हो सकता है। सरकार यदि चाहे तो जनता को धोखा देकर हत्यारे षड्यंत्रकारियों की अभी तो रक्षा कर दे और बाद में उन्हें छोड़ दे। ऐसा करना, जनता के साथ विश्वासघात और बापू की मृतात्मा का अपमान होगा। ऐसा करना घोर प्रतिक्रिया-वाद को प्रोत्साहन देना होगा। जनता ऐसा करने वालों को कभी क्षमा न करेगी।

समझौते का मार्ग

सरकार यदि चाहे तो प्रतिगामियों से समझौता कर सकती है। वह 'संकटपूर्ण परिस्थिति' का बहाना कर, 'अहिंसा और क्षमा' की नीति की दुहाई देकर, षड्यंत्रकारियों को मामूली-सी सज़ा देकर छोड़ दे सकती है। वह कठिनाइयों की ओर संकेत कर और थोड़े से लाभों का लुभावना स्वप्न दिखा कर हिलमिल नीति अपना सकती है। वह कह सकते हैं कि प्रतिगामी बाघ को हमने पालतू बना

लिया है। हो सकती है कि कुछ व्यक्ति इस दिखावटी स्वाँग या सरकस के धोखे में आ जायँ। पर स्मरण रखिये कि बाघ सदैव बाघ रहेंगे। स्वाँग के मालिक के धन-उपार्जन के साधन वे भले ही बन जायँ, पर जनता तो फिर भी उनके पास जाने में हिचकिचायेगी और उनसे डरेगी।

जनता को इस प्रकार कुछ दिनों के लिये धोखा तो दिया जा सकता, पर केवल कुछ दिनों ही। बहुत ही शीघ्र लोग यह जान जायँगे कि ऐसा करने वालों ने गाँधीजी के नाम पर बापू को धोखा दिया था। बापू ने समझौते अवश्य किये, किंतु उन्होंने कभी इन समझौतों को आदर्श नहीं बतलाया। प्रत्येक समझौते के बाद, वह फिर नये सिरे से आदर्श को प्राप्त करने की ओर जुट जाते थे। पर आज के कुछ व्यक्ति, जब थोड़ा-सा भी काम कर लेते हैं तो आदर्श को भूल कर स्वयं अपनी प्रशंसा करने लगते हैं। यदि उनकी यही नीति जारी रही, तो बहुत शीघ्र ही उन्हें पता लग जायगा कि मुसलमानों, काश्मीर और हैदराबाद के प्रश्न उठा कर भी वह जनता को बेवकूफ न बना सकेंगे।

आदर्श मार्ग

तो समझौते का मार्ग सरल है और साथ ही उसको अपनाने से सस्ती और क्षणिक लोकप्रियता भी मिल जाती है। पर उसे अपनाकर यदि आदर्श को भुला दिया जाय तो वह पतन का मार्ग बन जाता है। अवसरवादी भी प्रायः ऐसा ही मार्ग अपनाते हैं। हम चाहते हैं कि हमारे नेता और सरकार नीति में समझौता कर ले, यदि वह बाध्य हो जाय तो। पर वह आदर्श के साथ कभी समझौता न करे। यही नहीं, जब वह कोई भी समझौता करे, तो उसे साफ़-साफ़ जनता को यह बतलाना चाहिये कि किन कारणों से विवस होकर उसे ऐसा करना पड़ रहा है जिससे जनता स्वयं समझ सके कि यह बहानेबाज़ी है, अवसर वादिता है या ईमानदारी की बात है। यदि यह ईमानदारी की बात है, तो हमें यह स्पष्ट कह देना चाहिये कि ऐसे सभी समझौते अस्थायी हैं और परिस्थितियों के अनुकूल होते ही हम फिर आदर्श की ओर बढ़ने का प्रयत्न करेंगे।

सरकार उत्तर दे

तो हमारे नेताओं को यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि वह क्या करना चाहते हैं। आज हमारी केन्द्रीय सरकार दो आवाजों से बोल रही है। पण्डित नेहरू जहाँ साफ़-साफ़ प्रतिगामियों को ललकार रहे हैं, वहाँ सरदार पटेल राजाओं की देश-भक्ति के गुण गाकर हमें अहिंसा का पाठ और क्षमा करने की नीति पर उपदेश दे रहे हैं। पर अहिंसा का यही पुजारी किसानों पर, विद्यार्थियों पर, मजदूरों पर गोली चलवाने में बड़ा मजा लेते हैं। संघ को तो वह 'देशभक्त' कहते हैं पर मुसलमानों, तथा अन्य विरोधियों को गाली देने में उनकी जबान पैनी छुरी हो जाती है। क्या कारण है इसका ? पण्डित नेहरू की काश्मीर नीति का सरदार पटेल ने क्यों खुले आम विरोध किया ? क्यों उन्होंने यह कहा कि यदि काश्मीर लड़ कर ही हमें लेना है, तो जन-मत-संग्रह काहे का* ? हमें कोई बतलाये कि काश्मीर के बारे में और मुसलमानों के बारे में पटेल की नीति और घोर प्रतिगामियों की नीति में क्या भेद है ? आप शायद कहेंगे कि घोर प्रतिगामियों की नीति तो राजाओं को स्वेच्छाचारी बने रहने देने को है। पर हम तेरहवीं शताब्दी जैसे विचार रखने वाले प्रतिगामियों की नहीं कह रहे। हम तो प्रजातंत्रीय प्रतिगामियों को बात कह रहे हैं। हम तो उन लोगों की बात कह रहे हैं जो जनता की वोट पर चुने जाकर जनता के साथ विश्वासघात करने के लिये ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। हम श्री० के० एम० मुंशी जैसे अवसरवादी व्यक्तियों की बातें कह रहे हैं।

पण्डित नेहरू से साफ़ बातें

फिर भी, हमारे श्रद्धेय नेता पण्डित नेहरू कहते हैं कि सरदार पटेल और उनकी नीति में कोई भेद नहीं‡। इसके अर्थ केवल यही हो सकते हैं कि पण्डितजी के आदर्श विरोधियों के सामने चल नहीं पाते।

---

* देखिये, सरदार पटेल के भाषण

‡ उनका रेडियो-भाषण, १४-२-१६४८, देहली

दूसरे लोग उनके ऊपर हावी हो जाते हैं। पण्डितजी का हृदय बापू के समान ही विशाल है। इसीलिये लार्ड वैवल की बदमाशी के बावजूद भी पण्डितजी ने विदाई के समय उसकी प्रशंसा की। पर इस समय पण्डितजी से जनता बहुत आशा कर रही है। अपने १४ फरवरी, १६४८ के भाषण से पण्डितजी न जाने कितने हृदयों को ठेस पहुँचाई होगी। अच्छा होगा यदि वह इस विषय में सोचें। यदि वह सरदार पटेल की नीति से सहमत हैं तो आदर्शवाद छोड़ दें। यदि वह सहमत नहीं हैं, तो प्रधान मंत्री वह हैं। वह अपने साथियों को यह स्पष्ट बतला दें कि कोई भी भाषण, वक्तव्य या कार्य बिना उनके परामर्श के न दिया जा सकेगा। यदि वह यह नहीं कर सकते, तो अच्छा होगा कि वह बापू की तरह ही काँग्रेस से पृथक् होकर, प्रगतिशील शक्तियों का नेतृत्व अपने हाथों ले लें। काँग्रेस के बाहर रह कर वह देश की अधिक सेवा कर सकेंगे। नहीं तो उनके बारे में लोगों को अनेक भ्रम पैदा हो जायँगे। या तो पण्डितजी को काँग्रेस का नेतृत्व अपने हाथों में लेकर उसे अपने अनुरूप बनाना चाहिये, नहीं तो उससे निकल आना चाहिये। अन्यथा लोग भ्रम में पड़ जाते हैं और इससे उन्हें, जनता को और देश को, सभी को हानि होती है।

जनतंत्र या स्वेच्छाचारिता

कभी-कभी तो हमें यह भ्रम होने लगते हैं कि हिंद में जनतंत्र नाम की कोई वस्तु है भी या नहीं। भारतवर्ष की जो परिस्थिति इस समय है, उसकी तुलना किसी भी प्रजातंत्रीय देश की शासन-प्रणाली से नहीं की जा सकती। ऐसा ज्ञात होता है कि हिन्द एक ज्वालामुखी के किनारे खड़ा है : या तो वह प्रथम महायुद्ध के पश्चात् के जर्मनी और इटली के समान फ़ासिस्ट बन जायगा या उसे मुस्तफ़ा कमाल पाशा की नीति को अपनाना होगा। यदि ताजे उदाहरण आप चाहें तो नई इटली आदि के नाम दिये जा सकते हैं। हमारा विश्वास है कि फ़ासिज्म की लपटें हमको समाप्त न कर सकेंगी। हम बढ़ेंगे, प्रगति की ओर, दृढ़ता के साथ, साहस के साथ और विश्वास के साथ।

: १० :

फ़ासिज्म से बचने के उपाय

फ़ासिज्म का उदय अँग्रेज़ों की 'फूट-नीति' के कारण हुआ। उसने न केवल विभिन्न सम्प्रदायों को लड़ाने का ही प्रयत्न किया, वरन् छूत और अछूतों के झगड़े को मिटाने के बजाय बढ़ाने में सहायता दी। यही नहीं, उन्होंने राजाओं, ज़मींदारों तथा बड़े-बड़े व्यवसाइयों को भी उभाड़ कर, उनकी सहायता से अपना काम बनाना चाहा। इसीलिये उन्होंने इन सम्प्रदायवादी शक्तियों का, उपरोक्त स्वार्थों से गठ-बन्धन करा दिया। इस अपवित्र मिलन से हिन्दू फ़ासिज्म, मुस्लिम फ़ासिज्म और सिख फ़ासिज्म की नींव पड़ी। और उसका फल भारत के बँटवारे के रूप में, भीषण रक्तपात के रूप में और अन्त अपने पूज्य बापू के निधन के रूप में हमारे सामने आया और यह विष अब इतना बढ़ गया है कि यदि इसे बुझाने का उपाय ठीक से न किया गया तो यह हमें अवश्य ले डूबेगा*।

साम्प्रदायिक संस्थाओं का अन्त

तो किया क्या जाय? सबसे पहली बात, जो की जा सकती और अवश्य की जानी चाहिये, यह है कि समस्त ऐसी साम्प्रदायिक संस्थाओं को जिनका उद्देश्य राजनीतिक हो, क़ानूनन भङ्ग कर देना चाहिये। ऐसा न मानने वालों को मृत्यु दण्ड दिया जाना चाहिये। यदि यह न किया गया, तो फ़ासिज्म की प्रगति नहीं रोकी जा सकेगी।

सम्प्रदायवादी फ़ौजों पर रोक

दूसरी बात यह होनी चाहिये कि सभी सम्प्रदायवादी फ़ौजें तोड़

---

* इस 'फूट-नीति' को विस्तार से समझने के लिये, देखिये मेरी पुस्तक 'राष्टीय स्वयंसेवक संघ क्या है?' (आगरा. १९४८). पृष्ठ १३-५०।

देनी होंगी। साम्प्रदायिक व्यायामशालायें और अखाड़ों पर भी रोक लगानी होगी। यही नहीं, सरकारी फ़ौजों की टुकड़ियों को भी जाति या धर्म के आधार पर सङ्गठित न कर, फिर से राष्ट्रीय आधार पर सङ्गठित करना होगा। राजनीतिक सेवा-दल इसी शर्त पर रह सकेंगे कि वे सभी धर्म तथा सम्प्रदाय वालों के लिये समान रूप से खुले होंगे।

रजवाड़ों की फ़ौजें न हों

गाँधीजी की हत्या के बारे में और हिन्दू फ़ासिज्म के विकास में राजाओं तथा जागीरदारों ने जो भाग लिया है उसे देखते हुए रजवाड़ों को फ़ौज रखने की अनुमति देना एक भारी भूल होगी। १६ फरवरी, १६४८ ई० को पार्लियामेंट में जब मि० खुरशेद लाल ने इस प्रश्न को उठाया तो सरदार पटेल ने उत्तर दिया—

'नहीं, हिन्द सरकार का इसमें हित है कि राज्य अपने खर्चे पर अपनी फ़ौजें रक्खें (हँसी) !'

एक दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुये उन्होंने कहा—

'आन्तरिक मामलों में रजवाड़ों की फ़ौजों पर कोई भी नियन्त्रण करने की आवश्यकता नहीं है। पर जब वह रजवाड़ों से बाहर प्रयुक्त होंगी, तो उन पर हिंद सरकार की पूरी कमाण्डरी रहेगी।'

हम सरदार पटेल से यह पूछना चाहते हैं कि 'राज्यों का खर्चे' क्या राजाओं की जेब से जाता है? इस नीति का परिणाम यह होगा कि राज्य पिछड़ जायँगे, क्योंकि एक तो उनकी आमदनी वैसे भी कम है, दूसरे उन पर फ़ौज का खर्च लद जायगा। यही नहीं, इन फ़ौजों को, राजा लोग आन्तरिक मामलों में, जैसे चाहेंगे, प्रयुक्त कर सकेंगे। उस पर भी मजे की बात यह है कि जिन राज्यों के पास फ़ौजें हैं, उन्हें प्रान्तों में नहीं मिलाया जा रहा है, वरन् उनके गुट बनाये जा रहे हैं। पाठक देखें और समझें कि इस नीति का क्या परिणाम होगा! और इसी नीति को एक 'गौरवपूर्ण क्रान्ति' (Bloodless Revolution) समझने के लिये हमसे कहा जा रहा है। हम नहीं जानते

कि सरदार पटेल यह समझते नहीं हैं और स्वयं धोखे में हैं अथवा हमें जान बूझ कर धोका देना चाहते हैं !

काँग्रेस का अन्त करो या शुद्ध करो

काँग्रेस के अन्दर जो खराबियाँ घर कर गई हैं, उनसे कोई अनजान नहीं है। दूर की बातें जाने दीजिये, इन्हीं दिनों काँग्रेसियों में पदों के लिए जो छीना-झपटी हो रही है, वह किसी से छिपी नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति एक छोटा-मोटा तानाशाह बन जाना चाहता है। हिटलर और मुसोलिनी मर गये, पर प्रत्येक नगर और शहर में, अनेक छोटे-बड़े हिटलर और मुसोलिनी भरे पड़े हैं। इन्हीं लोगों ने बापू को हमसे छीन लिया। और अब यह फ़ासिज्म की ओर तेज़ी से कदम बढ़ा रहे हैं।

पदों के अतिरिक्त, नौकरियों के लिए भी जिस ढंग से भरती की जा रही है, उसे देखकर प्रत्येक सच्चे काँग्रेसी का सिर शर्म से झुक जाता है। योग्यता पर ध्यान दिये बिना दोस्तों को लिया जा रहा है। जेल के सार्टिफ़िकेट के बिना कोई बात नहीं पूछता। योग्यता गई चूल्हे में, यदि आप किसी प्रभावशाली काँग्रेसी के मित्र या सम्बन्धी हैं तो आपकी नौकरी पक्की है। क्या यही है हमारा त्याग और तपस्या ? मुझ जैसे काँग्रेसी और गाँधीजी के प्रति श्रद्धा रखने वालों से जब यह प्रश्न उठाया जाता है तो शर्म से झुक कर मेरी गर्दन नीची रह जाती है।

एक बार जहाँ विश्वास गया, फिर सभी बातें आसानी से समझ में आ जाती हैं। जब हमें बतलाया जाता है कि यू० पी० के मन्त्री, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रिश्वतें लेते हैं तो हमें कहना पड़ता है कि होगा भाई, हमें माफ़ करो !

शायद इन्हीं बातों से तङ्ग आकर गाँधीजी कह गये थे कि काँग्रेस को एक राजनीतिक पार्टी के रूप में समाप्त कर दिया जाय। उसके पतन की कहानी तो वह इधर बहुत दिनों से सुना रहे थे।

पर क्या काँग्रेस को समाप्त किया जायगा ? आसार तो ऐसे दिखलाई नहीं देते ! इस बारे में बोलने वाले सर्वोच्च अधिकारी बापू के बाद पण्डितजी ही हैं। बापू बहुत पहले कह गये थे कि मेरे मरने के

बाद मेरे नैतिक और राजनीतिक उत्तराधिकारी नेहरू होंगे। तो पण्डितजी को सोचना चाहिये, इस बारे में। और जो कुछ भी वह ठीक समझें, उसकी स्पष्ट घोषणा कर देनी चाहिये।

यदि काँग्रेस का अन्त नहीं करना, तो उसकी नीति स्पष्ट करनी होगी। यही नहीं, उसमें से छिपे रुस्तमों को भी निकाल कर बाहर करना होगा।

सरकारी नौकरों की जाँच

यही नहीं, प्रत्येक सरकारी नौकर के चाल-चलन और दृष्टिकोण की जाँच होनी चाहिये। इन लोगों ने सब स्थानों पर सम्प्रदायवाद के ज़हर को इस बुरी तरह फैला रक्खा है कि कोई ठिकाना नहीं।

ज़मींदारी का अन्त

हम एक लम्बे अरसे से यह कहते आये हैं कि हम ज़मींदारी का अन्त कर देंगे। पर हमने किया कुछ नहीं। हमारी सुस्ती से लाभ उठा कर इन लोगों ने फ़ासिज्म की शरण ली। अतएव इस प्रथा को उठाकर शीघ्र ही हमें एक समाजवादी व्यवस्था लानी चाहिये।

ट्रस्ट जायदाद का सामाजीकरण

बापू ने अपने अन्तिम लेखों में से एक में कहा है कि मन्दिर, गद्दियाँ, धर्मशाला आदि सभी ट्रस्ट जायदाद जनता की हैं। पर हो क्या रहा है ? स्वार्थी लोग जनता को धोखा देकर, उन्हीं के धन का दुरुपयोग कर, उन्हीं के हितों के विरुद्ध कार्य करते हैं। कहा जाता है कि गांधीजी की हत्या में कुछ महन्तों का प्रमुख हाथ था। अतएव समाज की इन जोंकों का हमें अन्त कर देना चाहिये। सभी स्थानों पर स्थानीय ट्रस्ट बनाये जायँ। ये ट्रस्ट एक केन्द्रीय ट्रस्ट कमेटी के अन्तर्गत कार्य करें। इनका बाकायदा हिसाब रक्खा जाय और इनकी आय केवल जनहित के कामों में खर्च हो। यदि आवश्यकता पड़े तो इन ट्रस्टों को धर्म के आधार पर विभाजित किया जा सकता। पर ऐसा केवल धार्मिक जायदाद के बारे में होना चाहिये।

हिन्दू बिल

इसके साथ ही हमें 'हिन्दू बिल' को हिन्द पार्लियामेंट से पास करा समस्त हिन्द में उसे लागू कर देना चाहिये। ऐसा हो जाने पर हिन्दू प्रतिगामियों तथा पुरातनवादियों की कमर टूट जायगी।

प्रधान उद्योगों का राष्ट्रीयकरण

यही नहीं, हमें शीघ्र ही समस्त मुख्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर देना चाहिए। कहते रहने और काम न करने का परिणाम यह होता है कि दुश्मन सतर्क हो जाते हैं और पहले ही धावा बोल देते हैं। महात्मा गाँधी और पण्डित नेहरू के विरुद्ध प्रचार तथा उनकी हत्या के षड्यन्त्र के पीछे यही मनोवृत्ति काम कर रही है।

राज्यों का प्रश्न

यह प्रश्न बहुत उलझ गया है। कुछ लोग हमको यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि राज्यों के संघ में सम्मिलित हो जाने से बड़ा काम हो गया है। सच बात तो यह है कि राज्यों में जो चालें चली जा रही हैं, उनसे साफ़ ज़ाहिर होता है कि अभी इनमें बहुत संघर्ष करना होगा। पर हमारी सरकार कम से कम यह तो कर ही सकती है कि वह ऐसी सरकारों को कोई सहायता न करे, जहाँ पूर्णतः उत्तरदायी शासन नहीं है।

आम शिक्षा

उपरोक्त ढंग तो रोक-थाम के हैं, पर जनतंत्र का सच्चा आधार तो जनता की राजनीतिक जाग्रति है। अतएव हमें शीघ्रातिशीघ्र शिक्षा का प्रसार करना चाहिए और राजनीतिक जाग्रति फैलानी चाहिए। धार्मिक शिक्षा यदि हो, तो केवल वही बातें बतलाई जायँ, जो सभी धर्मों में समान रूप से पाई जाती हैं। अच्छा तो यह होगा कि हम धर्म-निरपेक्ष साधारण शिक्षा दें।

आर्थिक सुरक्षा

यही नहीं, हमको रोटी के प्रश्न को सबसे पहले सुलझाना चाहिए।

राज्य को जनता को 'न्यूनतम आय' देने का भार लेना चाहिये, सब उद्योगों में ठीक वेतन नियत किये जाने चाहिये और प्रत्येक व्यक्ति के लिये रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा तथा दवा का पूरा प्रबन्ध होना चाहिये। ऐसा तभी हो सकता है जब कि सरकार स्वयं इन आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले साधनों के मुख्य उद्योगों पर साथ ही कब्जा कर ले। अन्यथा हमेशा रुपये का प्रश्न रहा आवेगा।

शरणार्थियों का प्रश्न

सरकार को शरणार्थियों के प्रश्न को साहस से सुलझाना चाहिये। सरकार इस संबन्ध में अपनी जिम्मेवारी दूसरों पर नहीं छोड़ सकती। बिना इस समस्या के सुलझे, आगे उन्नति नहीं हो सकती।

आशा यह की जाती थी कि मेरठ काँग्रेस में अपना ध्येय समाजवादी जनतंत्र घोषित करने के बाद काँग्रेसी सरकारें इस समस्या को समाजवादी ढंग से हल करेंगी। परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। इससे यह पता चलता है कि या तो हममें समझ की कमी है अथवा साहस की।

अंध राष्ट्रीयता छोड़िये

साथ ही हमें आक्रमक राष्ट्रीय नीति का परित्याग करना होगा। पाकिस्तान, काश्मीर और हैदराबाद के झगड़े, जनता के हित में, और प्रजातन्त्र के आधार पर सुलझाने चाहिये। इस क्षेत्र में पण्डित नेहरू की नीति काफी सफल रही है। यदि हम मूर्ख बन कर लड़ बैठे, तो फ़ासिस्ट शक्तियाँ हम पर हावी होकर देश को पतन को ओर ले जायँगी।

उत्साह से काम लीजिये

हम जानते हैं कि यह कार्य सरल नहीं है। पर ये काम करने तो हैं ही। यदि ढिल-मिल नीति को छोड़ कर साहस से काम लिया गया, तो निसन्देह ये सारी बातें आसान हो जायँगी।

पर यदि हम समय रहते न चेतें तो फ़ासिस्ट शक्तियाँ फिर से

उठावेंगी और हमारे देखते-देखते वह सारे हिन्द में फैल जायँगी। यह बापू की और जनता की हार होगी।

इतिहास बाद में कहेगा कि हमारे नेता समय पर साहस और समझ का परिचय न दे सके। उन्होंने राष्ट्र-विरोधी तत्वों की शक्ति को न समझा। पर क्या हम ऐसा होने देंगे? नहीं ऐसा कदापि न हो पायेगा। हम फ़ासिज़्म को रोकने के लिये अपनी जान की बाज़ी लगा देंगे, पर किसी को यह न कहने देंगे कि परिस्थिति को हम समझ न सके। हम जानते हैं कि जनता हमारे साथ होगी, सत्य हमारे साथ होगा और होगा बापू का आशीर्वाद, जो हमारे लिये एक सर्वोत्तम वस्तु है।

बापू अमर हैं

जय हिंद

: ११ :

नेहरू की ललकार

१—अमृतसर-भाषण

(२६-१-१६४८)

"...मैं कहता हूँ कि भारत और पाकिस्तान के बीच में युद्ध होने की कोई सम्भावना नहीं है।......हम दोनों काम एक साथ नहीं कर सकते कि लड़ें भी और देश का निर्माण-कार्य भी करें। मैं युद्ध नहीं चाहता......"

२—पार्लियामेण्ट-भाषण

(२-२-१६४८)

"...यह बात कि इस विशाल हृदय को जिसे हम श्रद्धा और प्यार करते थे, हम न बचा पाये, हमारे लिये एक शर्म की बात है।... एक शान थी, वह अब नहीं रही, वह एक सूर्य था जो हमें गर्मी और रोशनी देता था। उसके बिना हम अँधेरे में काँप रहे हैं।......उन्हें अपने ही आदमियों की कमजोरी पर बड़ा दुख होता था।......उन्होंने अपनी जान देकर वह काम पूरा कर दिया जिसके लिये वह जिंदगी भर लड़े।......आवो, हम सब फिर एक बार प्रतिज्ञा करें कि उन्होंने जो काम अपने हाथ में लिया था......उसे हम पूरा करेंगे।"

३—रामलीला के मैदान में भाषण

(२-२-१९४८)

"...पिछले तीन दिनों ने देश का का एक नक़शा ही बदल दिया है।......सोचना यह है कि कैसे एक ऐसी फ़िज़ा (वातावरण) पैदा हो गया जिसमें हत्यारे जैसे आदमी रहे और फिर भी अपने को हिन्द वासी कहते रहे।......गाँधीजी के मरने पर कुछ लोगों ने मिठाइयाँ बाँटी और खुशियाँ मनाईं। हमें शर्म आती है कि हमने ऐसे ख्यालात बढ़ने दिये।......हमें एक गन्दी फ़िज़ा से देश को साफ़ करना है।......हममें से बहुतों ने गाँधीजी की जय का नारा लगाया, पर हममें से कितने व्यक्ति ऐसे हैं जो उनकी बात मानते हैं और उनके दिखलाये रास्ते पर चलते हैं।......आज़ादी तो हमें मिली, पर हम बहक गये।......हमें यह सोचना और तय करना है कि हम सम्प्रदायवादी संगठनों के प्रति क्या रुख बनायें। क्या हम हिंद को एक ऐसा मुल्क बनाना चाहते हैं जहाँ अलग-अलग मज़हब के व्यक्ति न रह सकें?......हम साम्प्रदायिकता की एक बहुत बड़ी कीमत चुका चुके हैं। हम आइन्दा इसको हरग़िज़ बर्दाश्त न करेंगे।...... हमारे ऊपर एक बड़ी भारी जिम्मेवारी आ गई है।......"

४—प्रयाग में फूल-बिसर्जन के पश्चात् भाषण

(१२-२-४८)

"याद रक्खो कि महात्माजी ने किस बात पर जान दी...आदर उनके नाम का नहीं वरन् उस उद्देश्य का [करो] जिसके लिए उन्होंने जान दी।......इस देश में जो विष फैलाया गया है उसके यह पौदे निकल रहे हैं......जो जहरीली बातें हैं उनसे हम दुश्मनी करेंगे......और हरावेंगे......गाँधी-युग तो अब एक दूसरी तरह से शुरू हुआ है.....उनके आखिरी उद्देश्य को याद रखना है......... वह यह है कि हमें डरना नहीं चाहिए।

स्वराज्य तो हमें मिला, पर हम बहक गये······जो धर्म के नाम पर राजनीतिक झगड़े हुए हैं, उन्होंने हमारे देश को नीचे गिराया है···गाँधीजी ने उपवास किया कि जनता जागे······किसे मालूम था कि थोड़े ही दिन में उनका, एक ज्यादा लम्बा सिलसिला, मौन का शुरू हो जायगा······वह हमेशा के लिए मौन हो गये। यदि ऐसी बातें जारी रहीं······तो यह बड़ी खतरनाक बात होगी······ये हमारे देश को ले डूबेंगी।

जो हमें, आपको नहीं समझा सकते, वह तलवार तथा बन्दूक लेकर मारना चाहते हैं क्योंकि जनता उनकी विरोधी है······जिससे वे झगड़ा-फ़िसाद कराकर फाइदा उठावें······ऐसी बात क्यों हुई ? क्योंकि हमारे देश के ऐसे लोग जो ऊँची-ऊँची पदवियों पर हैं उन्होंने इस ज़हर को फैलाया···हम ऐसा नहीं होने देंगे।

वह तो हमारे देश के पिता थे···उनके जाने से ऐसा ही शोक है जैसा पिता के जाने से होता है।

···हम यहाँ से जायँगे, एक गरूर लेकर···उन्होंने जो रास्ता हमें दिखलाया, वह लड़ाई का था···वह लड़ाई थी शांति की, अहिंसा की, सच्चाई की···हमें अपना फ़र्ज अदा करना है···हम सच्चाई के रास्ते पर चलें।

······महात्मा गाँधी की जय हमने कितने बार पुकारी······ जय हमारी और आपकी वह चाहते थे। उन्होंने देश की जय चाही थी।······वह कैसी जय चाहते थे ?······सच्चाई की जो अटल हो।

···जो धर्म हैं, वह सब हमारे हैं। विदेश के नहीं···वह चाहते थे कि हमारा, जनता का राज्य हो···यह नहीं कि थोड़े से अमीर लोग उनके हिस्सेदार हों···[और वह] आम जनता का न हो···कठिन बात है यह······पर समय आगया है कि हम चुस्ती से आगे बढ़े।

लेखक की अन्य पुस्तकें

१—संसार के विधान (आगरा; १९४७)

डा० पट्टाभि सीतारमैय्या की Constitutions of the World का हिन्दी रूपान्तर तथा सम्पादन

२—नागरिक शास्त्र की रूपरेखा (देहली; १९५७)

३—India's Saviour Crucified ! (आगरा; फरवरी, १९४८)

४—राष्ट्रीय स्वयंसेवक सङ्घ क्या है ? (आगरा; फरवरी, १९४८)

५—आज़ाद 'हिन्द' का प्रस्तावित विधान (छप रही है)